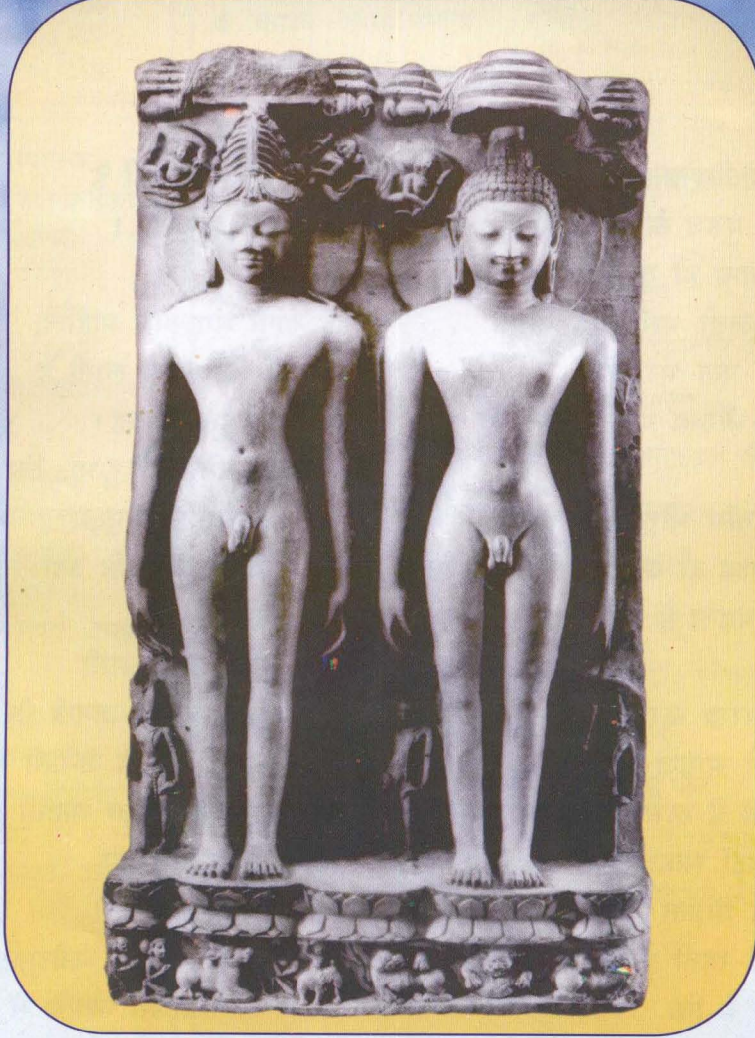


# जिनभाषित

वीर निर्वाण सं. 2536



तीर्थकर ऋषभदेव एवं तीर्थकर महावीर भगवान्  
ब्रिटिश म्यूजियम, लन्दन (WC 1B 3DG) में स्थित

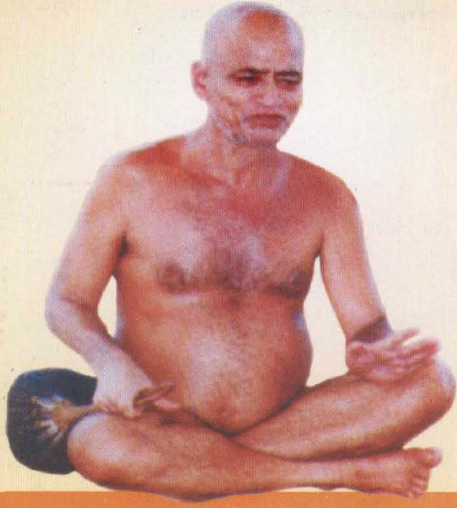
कार्तिक-मार्गशीर्ष, वि.सं. 2066

नवम्बर, 2009

● मूल्य 15/-

www.jainelibrary.org





# स्त्री-जाति की कई विशेषताएँ

आचार्य श्री विद्यासागर जी

स्त्री-जाति की कई विशेषताएँ हैं  
जो आर्द्रश रूप हैं पुरुष के सम्मुख।  
प्रतिपल परतन्त्र हो कर भी  
पाप की पालड़ी भारी नहीं पड़ती  
पल-भर भी!  
इनमें, पाप-भीरुता पलती रहती है  
अन्यथा,  
स्त्रियों का नाम भीरु क्यों पड़ा?  
प्रायः पुरुषों से बाध्य हो कर ही  
कुपथ पर चलना पड़ता है स्त्रियों को  
परन्तु,  
कुपथ-सुपथ की परख करने में  
प्रतिष्ठा पाई है स्त्री-समाज ने।  
इनकी आँखें हैं करुणा की कारिका  
शत्रुता छू नहीं सकती इन्हें  
मिलन-सारी मित्रता  
मुक्त मिलती रहती इनसे।  
यही कारण है कि  
इनका सार्थक नाम है 'नारी'  
यानी-  
'न अरि' नारी...  
अथवा

ये आरी नहीं हैं  
सो... नारी...।  
जो  
मह यानी मंगलमय माहौल,  
महोत्सव जीवन में लाती है  
महिला कहलाती वह।  
जो निराधार हुआ, निरालम्ब,  
आधार का भूखा  
जीवन के प्रति उदासीन-हतोत्साही हुआ  
उस पुरुष में...  
मही यानी धरती  
धृति-धारणी जननी के प्रति  
अपूर्व आस्था जगाती है।  
और पुरुष को रास्ता बताती है  
सही-सही गन्तव्य का-  
महिला कहलाती वह!  
इनता ही नहीं, और सुनो!  
जो संग्रहणी व्याधि से ग्रसित हुआ है  
जिसकी संयम की जठराग्नि मन्द पड़ी है,  
परिग्रह-संग्रह से पीड़ित पुरुष को  
मही यानी  
मठा-महेरी पिलाती है,  
महिला कहलाती है वह...!

'मूकमाटी (पृष्ठ २०१-२०३)' से साभार

## जिनभाषित

सम्पादक  
प्रो. रतनचन्द्र जैन

## कार्यालय

ए/2, मानसरोवर, शाहपुरा  
भोपाल- 462 039 (म.प्र.)  
फोन नं. 0755-2424666

## सहयोगी सम्पादक

पं. मूलचन्द्र लुहाड़िया, मदनगंज किशनगढ़  
पं. रतनलाल बैनाड़ा, आगरा  
डॉ. शीतलचन्द्र जैन, जयपुर  
डॉ. श्रेयांस कुमार जैन, बड़ौत  
प्रो. वृषभ प्रसाद जैन, लखनऊ  
डॉ. सुरेन्द्र जैन 'भारती', बुरहानपुर

## शिरोमणि संरक्षक

श्री रतनलाल कँवरलाल पाटनी  
(मे. आर.के.मार्बल)  
किशनगढ़ (राज.)  
श्री गणेश कुमार राणा, जयपुर

## प्रकाशक

सर्वोदय जैन विद्यापीठ  
1/205, प्रोफेसर्स कॉलोनी,  
आगरा-282 002 (उ.प्र.)  
फोन : 0562-2851428, 2852278

## सदस्यता शुल्क

शिरोमणि संरक्षक	5,00,000 रु.
परम संरक्षक	51,000 रु.
संरक्षक	5,000 रु.
आजीवन	1100 रु.
वार्षिक	150 रु.
एक प्रति	15 रु.

सदस्यता शुल्क प्रकाशक को भेजें।

## अन्तस्तत्त्व

पृष्ठ

- ◆ काव्य : स्त्री-जाति की कई विशेषताएँ : आचार्य श्री विद्यासागर जी आ.पृ. 2
- ◆ काव्य : बारह भावना : मुनि श्री योगसागर जी आ.पृ. 3
- ◆ सम्पादकीय : चातुर्मास के बाद अब क्या? 2
- ◆ प्रवचन : जिनशासन में चौथा लिङ्ग नहीं : आचार्य श्री विद्यासागर जी 4
- ◆ लेख
  - आचार्य विद्यासागर : जीवन अतिशय : मुनिश्री प्रणम्यसागर जी 6
  - सुन, समझ और पहिचान : एक चिन्तन : डॉ० (पं०) पन्नालाल जी साहित्याचार्य 9
  - जैन कर्म सिद्धान्त : स्व० पं० मिलापचन्द्र जी कटारिया 11
  - ज्ञातृ-पुत्र महावीर की जन्मभूमि वैशाली : महापण्डित राहुल सांकृत्यायन 14
  - भरतेशवैभव की अप्रामाणिकता : डॉ० शीतलचन्द्र जैन 17
  - पञ्चकारणसमवाय आगमोक्त नहीं-१ : प्रो० रतनचन्द्र जैन 21
  - तत्त्वार्थसूत्र में प्रयुक्त 'च' शब्द का विश्लेषणात्मक विवेचन (सप्तम अंश) : पं० महेशकुमार जैन 23
  - E-Numbers : स्वयं जानें, पहचानें एवं त्यागें मांसाहार 24
- ◆ जिज्ञासा-समाधान : पं. रतनलाल बैनाड़ा 26
- ◆ ग्रन्थ समीक्षा : शिवचरनलाल जैन 29
- ◆ काव्य : अभिनन्दनजिन-स्तवन : पं० निहालचन्द्र जैन 16
- ◆ समाचार 31

लेखक के विचारों से सम्पादक का सहमत होना आवश्यक नहीं है।

'जिनभाषित' से सम्बन्धित समस्त विवादों के लिये न्यायक्षेत्र भोपाल ही मान्य होगा।

## चातुर्मास के बाद अब क्या?

भगवान् महावीर निर्वाणदिवस-दीपावली की पूर्व रात्रि में प्रायः सभी संतों ने चातुर्मास (वर्षायोग) निष्ठापनक्रिया सम्पन्न की और अन्यत्र गमन कर दिया है, ताकि साध्वाचार की परम्पराओं का पालन हो सके। कतिपय आचार्य/आर्यिका/मुनि संघ ऐसे भी हैं, जो प्रायः एक ही स्थान पर रहते हैं, चातुर्मास के पहले भी और चातुर्मास के बाद भी, उन्हें यह विचार करना चाहिए कि वे अनियत विहार/प्रवास की व्याख्या कैसे करेंगे और उनके द्वारा भी, जो दीक्षित होंगे उन्हें क्या संदेश देंगे? अनियत विहार की यह प्रखर परम्परा बन्द नहीं होनी चाहिए।

साधु के एक ही स्थान पर रहने से वहाँ के गृहस्थों में अवज्ञा का भाव जन्म लेता है, आवश्यकों, वैयावृत्ति, भक्ति आदि में भी त्रुटि आने लगती है। श्रावकों/गृहस्थों में धर्म और धर्माचरण तथा साधुवृन्द के प्रति ऊब न हो तथा, जिन्हें धर्मश्रवण, मुनिभक्ति, आहारदान, वैयावृत्ति के अवसर नहीं मिलते, उन्हें भी यह अवसर मिल सके इसके लिए साधु का अनियत विहार आवश्यक है। यदि अनियत विहार बन्द होता है, तो वर्षायोग स्थापना का भी कोई औचित्य नहीं रह जायेगा।

विहार के समय आजकल विशेष सावधानी की जरूरत है, क्योंकि कतिपय ट्रक चालक मुनि के नग्नरूप से वितृष्णा के कारण और आर्यिकाओं में महिलाजनित सौन्दर्य एवं अपनी कुदृष्टि के कारण जानबूझकर कट मारते हैं और निर्दोष संतों को असमय कालकवलित होना पड़ता है। समाज को संतों के आहार-विहार की समुचित व्यवस्था विशेषरूप से विहारकाल में करनी चाहिए। अच्छा तो यह है कि एक स्थान की समाज साधु को अगले प्रवास स्थल तक पहुँचाकर आये। जो साधु रात्रि में या अंग्रेजी दिनाङ्क बदलने के साथ रेलवे समय के अनुसार प्रायः ३ बजे, ४ बजे और वह भी कारों की 'लाइट' में विहार करते हैं यह अनुचित है, शास्त्रविरुद्ध है और समयानुकूल भी नहीं है। इस पर पूरी तरह से रोक लगनी चाहिए। यदि इस तरह की क्रिया करते समय कोई दुर्घटना-वश मरण होता है तो इसे 'समाधि' कैसे कहें या शासन को कैसे कोसें?

आजकल कतिपय संघ डोली, कुर्सी (चलित) और रिक्शा-टाइप रथ, पालकी में विहार करने लगे हैं, क्षुल्लकों के लिए तो कार, ट्रेन, हवाई जहाज आम बात हो गयी है। इस पर तुरन्त रोक लगनी चाहिए। हम अहिंसा और ईर्यापथशुद्धि पर भी तो विचार करें कि ऐसा करने पर वह कैसे संभव है?

आज जैनसमाज में लौकिक शिक्षा का सूचकांक उच्च है। लड़कियाँ भी अब पीछे नहीं हैं, लेकिन धार्मिक शिक्षण की स्थिति का सूचकांक निम्न से निम्न स्तर तक पहुँच रहा है। महानगरों में बच्चों, किशोरों, युवाओं का मन्दिर में आना बन्द है। पाठशालाएँ नहीं हैं, और हैं भी, तो उनमें बच्चे भेजने के प्रति उत्साह का अभाव है। आज हम बड़े गर्व से कहते हैं कि महिलाएँ धर्मपरायण हैं और उनके सहारे धर्म चल रहा है, किन्तु जो आज की लड़कियाँ कल गृहस्थ जीवन में प्रवेश करेंगी, तो वे कौन-सी आस्था, कौन-सा धर्म, उपासनापद्धति लेकर आयेंगी, यह चिन्ता का विषय है। आज भी परिवारों में शिक्षा एवं संस्कार माँ ही देती है, अतः मातृवर्ग का धर्म से जुड़ा रहना पहली आवश्यकता है। इस हेतु धार्मिक शिक्षण के निरन्तर उपक्रम चलना चाहिए, तभी हमने जो चातुर्मास में संतों के मुख से सुना उसे आगे बढ़ा सकते हैं। धार्मिक उपदेश/शिक्षण हमारे लिए इसलिए जरूरी हैं कि-

धर्म केऽपि विदन्ति तत्र धुनते सन्देहमन्येऽपरे,  
तद्भ्रान्तेरपयन्ति सुष्ठु तमुशन्त्यन्येऽनुतिष्ठन्ति वा।

श्रोतारो यदनुग्रहादहरहर्वक्ता तु रुन्धन्नघं।  
विष्वग्निर्जरयंश्च नन्दति शुभैः सा नन्दतादेशना ॥

(अनगारधर्मावृत, १/५)

अर्थात् जिस देशना (धर्मोपदेश) के अनुग्रह से प्रतिदिन अनेक श्रोतागण धर्म को ठीक रीति से जानते हैं, अनेक श्रोतागण अपने संदेह को दूर करते हैं, अनेक अन्य श्रोतागण धर्मविषयक भ्रान्ति से बचते हैं, कुछ अन्य श्रोतागण धर्म पर अपनी श्रद्धा को दृढ़ करते हैं तथा कुछ अन्य श्रोतागण धर्म का पालन करते हैं और जिस देशना के अनुग्रह से वक्ता प्रतिदिन अपने शुभ परिणामों से आगामी पापबंध को चहुँओर से रोकता है और पूर्व उपार्जित कर्म की निर्जरा करता हुआ आनंदित होता है, वह देशना फूले-फले, उसकी खूब वृद्धि हो।

आज धार्मिक आयोजन भी धार्मिक शिक्षण से दूर हैं। भक्ति के क्षेत्र में प्रदर्शन की बाढ़ है। हम सादगी तो जैसे भूल ही गये हैं। भव्य पाण्डाल, भक्त सजावट, मँहगी विद्युतसज्जा, मँहगे संगीत कार्यक्रम (फिल्माधारित) और भोजनादि के नाम पर बहुव्यंजनयुक्त लक्झरी व्यवस्थाओं में हमें धर्म, अध्यात्म खोजने पर भी नहीं मिल रहा है। विधान, पंचकल्याणक आदि महोत्सवों में विद्वानों-प्रवचनों की अनुपस्थिति चिन्ता का विषय है। हमें मूर्ति की जितनी चिन्ता है उतनी इस बात की नहीं है कि हम भी कभी, जिसकी मूर्ति है उसके जैसा बन सकें। हम भूल गये हैं कि हमारा लक्ष्य 'वन्दे तद्गुणलब्धये' का है। आयोजन कोई भी बुरा नहीं होता, बशर्ते उसका प्रयोजन सही हो और उसकी फलश्रुति सार्थक हो। दर्शन के लिए प्रदर्शन होना चाहिए। हम मात्र प्रदर्शन के लिए प्रदर्शन न करें। आज आयोजक या तो द्रव्य की आय को फलश्रुति मान लेते हैं या मनोरंजन को, जबकि अध्यात्म और आत्महित की दृष्टि से दोनों सही उपयोग के बिना निरर्थक हैं। क्या समाज/संत/विद्वान् इस पर चिन्तन करेंगे?

आज की स्थिति तो निदर्शना की है, जिसमें-

जंग जीतना जो चाहते हैं तुमसे वैर बढ़ाकर।  
जीवित रहने की इच्छा करते हैं वे विष खाकर ॥

डॉ० सुरेन्द्र कुमार जैन, बुरहानपुर (म.प्र.)

### जैनसमाज के वरिष्ठ विद्वान

जैनगजट को और अधिक प्रभावशाली बनाने के उद्देश्य से महासभा के अध्यक्ष श्री निर्मलकुमार जी सेठी ने जैनसमाज के यशस्वी वरिष्ठ विद्वान् एवं जैनगजट के भूतपूर्व सम्पादक प्राचार्य श्री नरेन्द्रप्रकाशजी जैन को जैनगजट के परामर्शदाता पद पर मनोनीत किया है।

श्री चम्पापुरजी में आयोजित श्री इन्द्रध्वज विधान एवं जैनेश्वरी दीक्षा महोत्सव के अवसर पर विशिष्ट अतिथि के रूप में पधारे प्राचार्य श्री नरेन्द्रप्रकाशजी ने महासभाध्यक्ष श्री निर्मलजी सेठी को यहाँ जैनगजट के परामर्शदाता बनने की स्वीकृति प्रदान की एवं आचार्य श्री वर्धमानसागर जी महाराज से आशीर्वाद प्राप्त किया। श्री निर्मल जी सेठी द्वारा प्राचार्य जी को जैनगजट के परामर्शदाता बनाने की घोषणा करते हुए सह सम्पादक अजीत पाटनी ने उनके योगदान की भूरि-भूरि प्रशंसा की।

देश के प्रमुख विद्वानों पत्रकारों एवं श्रीमन्तों ने प्राचार्य जी को बधाई दी है। 'जिनभाषित' की ओर से कोटिशः अभिनन्दन।

अजीत पाटनी  
सह-संपादक- जैन गजट

श्री सिद्धक्षेत्र कुण्डलपुर (दमोह, म.प्र.) में मई २००७ में आयोजित श्रुताराधना शिविर में १४ मई २००७ के द्वितीयसत्र में विद्वानों की शंकाओं के समाधानार्थ आचार्यश्री द्वारा किये गये प्रवचन का चतुर्थ अंश प्रस्तुत है।

२८ मूलगुणों के साथ जो जिनलिङ्ग स्थापित किया है उसके अलावा जो कोई भी लिङ्ग है, वह जिनलिङ्ग नहीं है। इसलिए जिनेन्द्र भगवान के शासन में, जिनवाणी में तीन ही लिङ्ग हैं पंडित जी! चौथा लिङ्ग कोई भी नहीं आ सकता। यदि चौथा लिङ्ग आ गया तो पूछ लेना, कहाँ से आ गया? कौन से दरवाजे से आ गया? कुन्दकुन्द स्वामी ने दर्शनपाहुड में तीन ही लिङ्ग लिखे हैं। हम यह कहना चाहते हैं। समझ में आया क्या? जिस विधि से बताया गया है हम उसी विधि से बतायेंगे। यदि निषेध से बताया तो हम निषेध से बतायेंगे। चौथा लिङ्ग हो नहीं सकता। यदि है तो कोई आगम से बताये हमको। प्रवचनसार की दो गाथायें पठनीय हैं। बार-बार तो पढ़ते हैं आप लोग। हाँ, चारित्रचूलिका में ये गाथायें आयी हैं-

छदुमत्थविहिदवत्थुसु वदणियमञ्जयणझाणदाणरदो।

ण लहदि अपुणब्भावं भावं सादप्पगं लहदि। २५६।।

जो जीव छदुमत्थ विहित वस्तुओं में (अज्ञानी के द्वारा कथित देवगुरु धर्म आदि में) व्रत, नियम, अध्ययन, ध्यान, दान में रत होता है, वह मोक्ष को प्राप्त नहीं होता, किन्तु सातात्मक भाव को प्राप्त होता है।

विदिदपरमत्थेसु य विसयकसायाधिगेसु पुरिसेसु।

जुट्ठं कदं व दत्तं फलदि कुदेवेसु मणुवेसु। २५७।।

'जिन्होंने परमार्थ को नहीं जाना है और जिनके विषय-कषाय की प्रबलता है, ऐसे पुरुषों के प्रति सेवा, उपकार, दान कुदेवरूप और कुमनुष्यरूप में फल देता है।' दो बातें हैं, यदि आप लिङ्ग से लिङ्गान्तर को ग्रहण करेंगे और फिर भी प्रवचन करेंगे, व्रत, नियम, अनुष्ठान इत्यादि आप देते हैं धारण करने के लिए, तो लेने वाले का कल्याण नहीं होगा। कुन्दकुन्द स्वामी ने स्पष्ट लिखा है- जिनके पास जिनलिङ्ग नहीं है, फिर भी वे धर्मोपदेश आदि देना चाह रहे हैं तो वे जिनलिङ्ग के बाहर हैं। कोई भी हो इससे हमें क्या लेना देना। यह महावीर की वाणी है। ऋषभदेव की वाणी है। हमारे यहाँ व्यक्ति

की नहीं, जिनलिङ्ग की पूजा होती है। वह ट्रेडमार्क है। उसके माध्यम से मालूम होना चाहिए। वह ट्रेडमार्क लगा लिया। आपने लेबल लगा लिया और लोगों को समझा दिया। ऐसा नहीं होना चाहिए। पूज्यपाद और कुन्दकुन्द स्वामी के अनुसार मार्ग होना चाहिए। जिनशासन में चौथा लिङ्ग हो नहीं सकता।

घटना से जब तक हम अवगत नहीं होते हैं, तब तक कुछ प्राथमिक औपचारिकताएँ, चिकित्सायें होती हैं। प्राथमिक चिकित्सा अपने हाथ से करना सीख लो। कभी भी गिर सकते हैं। ऐसा नहीं कि गिरते चले जा रहे हैं, फिर भी चिकित्सा नहीं हो रही है। ऐसा नहीं होता, नहीं समझे? मान लो-यदि आप गिर गये तो तत्काल कुछ बाँध लें तो अच्छा है। 'मैं अपनी नयी धोती कैसे फाड़ सकता हूँ? बहुत कीमती है महाराज!'

कैसी भी हो तत्काल फाड़ो और बाँधो, तो रक्त नहीं बहेगा और डॉक्टर के यहाँ ले जाकर भर्ती कर दो। चिकित्सा वहाँ से लेना है। बाँधने का कार्य बहुत अच्छा होगा। इतना ही यहाँ पर कहा गया है। कोई दिग्म्बर होकर के मछली भी पकड़ रहा है, तो पहले नमस्कार कर लो। फिर अपनी बात मीठी वाणी में कहो, आपकी यह दशा कैसे हो गयी? हमारे रहते हुए आपने इस धिनौने कार्य को करने का कैसे निश्चय कर लिया? बिल्कुल उपचार करना प्रारंभ कर दो। क्योंकि स्थितीकरण करना आवश्यक है। इससे आगे नहीं बढ़ना है, यही तो है। 'अरे! कुछ नहीं है वहाँ पर, अरे! कुछ नहीं' ऐसा कैसे कहते हो? 'हमने अपनी आँखों से देखा है।' जिनलिङ्ग कहा कि जिनबिम्ब कहा, दोनों, भूल गये, ऐसा नहीं होता। देखो, यदि बहुमत बना करके तत्त्वनिर्णय करना चाहते हो तो हमारे पास न आओ। ध्यान रखो, आचार्यों ने 'अदत्तादानं स्तेयं' कहा है। किसी की आस्था को हम जबरदस्ती बदल नहीं सकते हैं। किसी को जबरदस्ती अपना समर्थक नहीं बनाया जा सकता। यदि बनायेंगे, तो वह केवल अन्धसमर्थक ही बनेगा। आप



वितण्डापूर्वक तत्त्व का प्रस्तुतीकरण करते हैं। व्यामोह से आप छूटना नहीं चाहते हैं।

आप अपने तर्क दीजिये ओर सन्तोष करिये। काम चल रहा है, ग्राहक को विवेक नहीं। वहीं ज्यादा जा रहा है, हमारे यहाँ कोई आ ही नहीं रहा है। इसलिए हम दूसरे की दूकान के सामने खड़े हो जायें। और हाथठेला लेकर दूसरे की दूकान के सामने खड़े हो जाते हैं। यह व्यापार है कि खेल है। ठेले का आरक्षण हो जाता है। लेकिन दूकानदार में तो एक्सेप्शन है। यह कहाँ नहीं हो रहा है। होने दीजिये। हाथठेले पर ज्वार बेचने वाले सड़क पर आ जायें तो कोई बात नहीं, किन्तु जौहरी हीरे-मोती ठेले पर लेकर सड़क पर आ जाये, तो मर्यादा नहीं रहेगी। उसको सेम्पल के रूप में बाजार में रखा जा सकता है, लेकिन आज नहीं रखा जा रहा है। गड़बड़ है। बहुमान समाप्त होता जा रहा है। कोई भी विनय नहीं रख रहा है। सम्यग्दर्शन के आठ अंगों के बारे में तो आपने सुना ही होगा। सम्यग्ज्ञान के आठ अंगों के बारे में शायद ही कोई चर्चा करता होगा। पंडितजी! क्या कहा, सुन रहे हैं न आप!

सम्यग्दर्शन के आठ अंगों के बारे में तो बहुत चर्चा होती है, किन्तु सम्यग्ज्ञान के आठ अंग शायद ही किसी विद्वान् को मुखाग्र हों। विद्वान् लोग-‘पुरुषार्थसिद्ध्युपाय में हैं महाराज जी!’ आचार्यश्री-पुरुषार्थसिद्ध्युपाय में तो हैं। पैंतीस श्रावकाचारों में हैं, लेकिन हम किसी विद्वान् से मौखिक सुनना चाहें, तो शायद ही कोई सुना पायेगा। अन्यथा नहीं लेना, क्योंकि सम्यग्ज्ञान के आठ अंग तो बाद में आ जायेंगे। सम्यग्दर्शन के आठ अंगों की चर्चा करो। युक्ति से नहीं, आगम से मिलान करोगे, तो कोई अपने आप को सम्यग्ज्ञानी नहीं कह सकेगा। सम्यग्दर्शन होना चाहिए, बिना ज्ञान के भी चल सकता है। जब बिना चारित्र के चल रहा है तो बिना ज्ञान के भी चल सकता है। श्रद्धान मजबूत होना चाहिए। यह चल रहा है आजकल, इसलिए लिङ्ग को जिस रूप में कहा गया है, उसको उस रूप में आप सुरक्षित नहीं रखोगे तो ध्यान रखना, आर्ष मार्ग आपके हाथों सुरक्षित नहीं है। इस सम्बन्ध में कोई प्रत्यक्ष या परोक्ष समर्थन करनेवाला व्यक्ति भी उसी में शामिल माना जायेगा।

मैं वोट सपोर्ट किसी के दे दूँ, यह संभव नहीं। लेकिन दुनिया इस बात को समझ नहीं पा रही है। जिनलिङ्ग

को सुरक्षित रखना एक मात्र ‘प्रवचन’ या ‘प्रकाशन’ से नहीं हो सकता, उसके प्रयोग और साधना भी जारी रहेंगे, तो वह सुरक्षित रहेगा। नहीं तो संभव नहीं है। कोई माने या न माने, सुरक्षा और बहुमत तो होना चाहिए। चूँकि आपने यह बात उठा दी, इसलिए जिनलिङ्ग के विषय में कहना पड़ा कि वस्तुस्थिति ऐसी है। फिर भी हम अपने आपको संरक्षक मानें, तो यह मान्यता ठीक नहीं है। सन्दर्भग्रन्थ लिखना और ‘लॉ’ की किताब के माध्यम से संविधानसूत्र के अनुसार ‘लॉ’ का पालन करना, दोनों में बहुत अन्तर है। परिभाषायें और सन्दर्भ ग्रन्थ बहुत लिखे हुए हैं। लॉ की किताब भी लिखी होगी। लेकिन संविधान बहुत नहीं लिखा जा सकता, संविधान एक रहता है। संविधान को सुरक्षित रखना आवश्यक है। लिखनेवाले तथा बोलनेवाले तो अनेक हो सकते हैं, किन्तु जजमेन्ट देनेवाला तो एक ही होता है।

समय हो गया, समय नहीं हुआ हम हो गये, ‘कालो न यातो वयमेव याताः’ क्योंकि काल के बारे में सुबह से सुन रहे हैं न। पंडित जी! ‘काल ने किया’ यह केवल कहने में आता है, लेकिन वस्तुतः वह निष्क्रिय द्रव्य है। काल के कारण सभी लोग सक्रिय हैं, निष्क्रिय नहीं हो सकते। क्योंकि हमारे स्वभाव में सक्रियता है। काल में निष्क्रियता स्वभाव से है। जिसके पास निष्क्रियता है वह दूसरे को सक्रिय नहीं कर सकता। घंटी बजने से हम उठ जाँय, ऐसा नहीं होता। उठने का हमारा अभ्यास है। ओम् शान्ति!\*

### सन्दर्भ

\*कालादयोऽनेनैवेच्छाहेतवो विध्वस्ताः, तेषां सर्व-कार्य-साधारण-कारणत्वाच्च नेच्छाविशेषकारणत्वनियमः।

अर्थ- विशिष्ट समय, विलक्षण क्षेत्र, आकाश आदि पदार्थ इच्छा के सहकारी कारण हो जाते हैं, यह बात भी व्यभिचारदोष हो जाने के कारण ही खण्डित कर दी गयी है। क्योंकि वे काल आदिक तो सम्पूर्ण कार्यों के प्रति साधारण कारण हैं। अतः उनके साथ हेय, उपादेय की विशिष्ट इच्छा के कारणपने का नियम नहीं हो सकता है। जो सभी कार्यों के साधारण कारण हैं, वे विशिष्ट कार्य के होने में नियामक नहीं हो सकते हैं।

त. श्लोकवार्त्तिकालंकारः तत्त्वार्थचिन्तामणिः

द्वितीय खण्ड, पृ. २५

# आचार्य विद्यासागर-जीवन अतिशय

मुनि श्री प्रणम्य सागर जी

अतिशय उन्हें कहते हैं, जो असामान्य होते हैं, और विशिष्ट पुरुष के साथ ही घटित होते हैं। ऐसे अतिशय जो असामान्य हैं, वे तीर्थकरों के ही होते हैं, परन्तु आत्मा के पूर्व जन्म के कर्म के कारण वर्तमान जन्म में भी कुछ अतिशय होते हैं, जो विशिष्ट आत्माओं को प्राप्त होते हैं। मैं यहाँ जिन महापुरुष की चर्चा करने जा रहा हूँ, वे तीर्थकर नहीं हैं, न ही उनके पंचकल्याणक हुए हैं। उन महापुरुष की संपूर्ण जीवनी को, जब मैं एक दृष्टि से समूचा देखता हूँ, तो इन पाँच महाअवसरों पर जो कि गर्भ, जन्म तप, ज्ञान और निर्वाण कहलाते हैं, कुछ विशिष्ट पाता हूँ। उन्हीं विशिष्टताओं को मैं आज आपको सुना रहा हूँ। ये विशिष्टतायें हैं, जिन्हें बहुत कम लोगों ने इस तरह देखा होगा। भक्ति में आप्लावित भक्त जब भगवान् की स्तुति करते हैं, तो ऐसा भी सोच बैठते हैं, जो न कभी घटित हुआ है और न हो सकता है। आचार्य पूज्यपाद देव ने एक जगह भक्ति करते हुए कहा है कि- “त्वं तत् त्यजोपेक्षणम्” अर्थात् हे भगवन्! आप अपनी उपेक्षा छोड़ दें। क्या भगवान् कभी उपेक्षा चारित्र छोड़ सकते हैं? नहीं। फिर भी भक्त भक्ति में अपने को भूल जाता है और श्रद्धेय के प्रति अति भक्ति में असंभव कल्पनाओं को भी कर लेता है। पर आप लोग निश्चिन्त रहें, हम आपको यथार्थ से अवगत करायेंगे, पर कुछ अलग तरह से।

## गर्भ का अतिशय

वर्तमान में हमने न समवशरण देखे, न तीर्थकर देखे, लेकिन आचार्य विद्यासागर महाराज को देखकर लगता है कि ये तीर्थकर तो नहीं, लेकिन तीर्थकर से हल्का पुण्य लेकर ही आये हैं, और जब इनका समवशरण देखते हैं, तो वास्तव में तीर्थकर जैसे ही दिखाई देते हैं। प्रत्येक महापुरुष के जीवन में पंचकल्याणक घटित हों, यह जरूरी नहीं है, लेकिन इनके जीवन में जो भी अभी तक जितना जीवन गुजर गया है, वह सब अतिशय के साथ हुआ। गर्भ समय में इनकी माँ ने स्वप्न में देखा कि दो चारण ऋद्धिधारी मुनिराजों को आहार दे रहे हैं। समझो क्या यह किसी गर्भ अतिशय से कम हैं?

## जन्म का अतिशय

जब इनका जन्म हुआ, तब जन्म होने के बाद जैसे ही बालक विद्याधर का जन्म होता है, तो इनके सामने सफेद ड्रेस पहने हुए बहुत सारी दिक्कुमारियाँ आकर खड़ी हो गईं। आपको मालूम आप कुछ नया-नया सुन रहे हैं, इनका जन्म सदलगा में नहीं हुआ, सदलगा के पास एक हॉस्पिटल है, चिक्कोड़ी ग्राम में। उस चिक्कोड़ी ग्राम में बालक विद्याधर का जन्म हुआ और जब बालक का जन्म हुआ, तब वहाँ पर बहुत सारी सफेद पोशाकों में सेविकायें उपस्थित थीं, जिन्हें आज कल इंग्लिश में ‘नर्स’ बोलते हैं। जैसे ही इनका जन्म हुआ, तब इनके स्वास्थ्य को देखने के लिए weight (वजन) लिया गया, ऐसा होता है हॉस्पिटल में। उनका weight (वजन) इतना एक्जैक्ट और एक्यूरेट था कि सब नर्स हर्षित होते हुए, माँ के पास आईं और कहने लगीं- माँ! ऐसा स्वस्थ बालक तो हमने पहले कभी देखा ही नहीं, हमने इतनी सारी डिलेवरी कराई हैं। कोई नर्स कहती- माँ! ये बालक बिलकुल एक्यूरेट वजन का है। कोई नर्स कहती है- माँ तुम्हारे बालक के जन्म के बाद भी तुम्हें उतनी पीड़ा नहीं हुई, जितनी पीड़ा एक सामान्य माँ को होती है। एक नर्स आकर कहती है- माँ पुत्रजन्म होने के बाद भी तुम्हारे चेहरे पर कोई म्लानता नहीं आई। एक नर्स दर्पण लेकर के आती है और कहती है- माँ! अपना चेहरा तो देखो, कितना अच्छा लग रहा है। ये जन्म के अतिशय हैं और क्या कहें?

## दीक्षा के अतिशय

१९ साल बाद बालक विद्याधर का राजस्थान में जब दीक्षामहोत्सव मनाया गया, तब सामान्य से उस शहर में सर्कस लगना था। सर्कस लगानेवाले लोग जगह ढूँढने शहर में घूम रहे थे कि हमें सर्कस लगाने के लिए जगह मिल जाये। उस समय वहाँ के सेठजी थे- सेठ भागचन्द्र जी सोनी। उनके पास वे लोग पहुँचे और बोले हमें सर्कस लगाने के लिए जगह चाहिए, ठीक उसी समय ज्ञानसागर जी महाराज ने घोषित कर दिया कि इनकी दीक्षा होना है और इसके लिए जो सामान्य से कुछ भी प्रोग्राम होता है, उसे करना है। यह बात सेठ



जी के दिमाग में आई। उनको उस समय हाथी नहीं मिल रहे थे। सब जगह ढूँढते-ढूँढते थक गए थे। सेठ भागचन्द्र जी ने सर्कस वालों से पूछा- तुम्हारे पास कोई ताम-झाम है कि नहीं, कुछ हाथी-घोड़े हैं कि नहीं? उन्होंने कहा- हमारे पास ७-८ हाथी और कुछ घोड़े भी हैं। सेठजी ने कहा- पहले ये हाथी हमें दो। कल यहाँ पर बहुत बड़ी दीक्षा होनेवाली है एक २०-२१ साल के युवा की। जिस युवा की दीक्षा में वहाँ के रहनेवाले लोगों ने भी विरोध किया था कि देखो महाराज-आप इतनी जल्दी इस युवा को दीक्षा मत दो, पहले थोड़ा सा और परख लो, लेकिन वो ज्ञानसागर जी महाराज ऐसे पारखी थे कि उन्होंने समाज की कुछ नहीं मानी और उन्होंने कहा- इनकी दीक्षा होगी, जो निश्चित समय है उस निश्चित समय पर होगी। तुम अपना काम करो, दीक्षा देना हमारा काम है, दीक्षा ग्रहण करना उसका काम है। अगर तुम लोग कुछ ज्यादा बोलोगे, तो हम इतनी भी सामर्थ्य रखते हैं कि किसी भी मंदिर में जाकर दीक्षा दे सकते हैं। जब उनकी यह बात और दृढ़ता देखी तो सेठ भागचन्द्र जी सोनी और जितने भी समाज के लोग थे सब चरणों में नतमस्तक हो गए बोले-कि महाराज यह दीक्षा बहुत ही हर्षोल्लास से मनेगी। उनका यह पुण्य देखो, जिन हाथियों को ढूँढने के लिये दूर-दूर तक लोग पहुँचाये थे, वो पुण्य उनका इतने पास में था कि वह खुद आकर के कहने लगा कि हम भूमि देने को तैयार हैं। कल तुम हाथियों को अच्छे से सजाकर ले आओ। जब विद्याधर की दीक्षा के लिए बिनौली निकाली गई, तो बताते हैं कि शहर में ऐसी सज्जा और इतना भव्य आयोजन न कभी हुआ और न कभी हो पायेगा। जब उनके दीक्षा संस्कार का समय आया तब मुनिराज ने इनके ऊपर संस्कार किये। उस समय राजस्थान में आषाढ़ मास में पंचमी के दिन भीषण गर्मी थी, बहुत समय से पानी भी नहीं बरसा था। गरम गरम लू चल रही थी, रेगिस्तानी एरिया होने के कारण लू के साथ-साथ गरम-गरम बालू के कण भी उचट-उचट कर आते थे। बहुत भीषण गर्मी थी पानी के बादल दूर-दूर तक नजर नहीं आ रहे थे। जैसे ही विद्याधर ने अपने वस्त्र उतारकर फेंके, तभी उस स्थान पर बादल का एक टुकड़ा आया और झम-झम वर्षा होने लगी। सभी आश्चर्य में पड़ गए कि इंद्र देवता कहाँ से आ

गए? यह हमसे श्रद्धा और भक्ति ही है कि हम उनके जीवन की प्रत्येक चर्या को अतिशय के रूप में देख सकते हैं।

### ज्ञान का अशितय

दीक्षा के बाद गुरु महाराज से ज्ञान अर्जन का कार्य निरंतर चलता रहा। कुछ समय बाद गुरु महाराज का देहावसान हो गया। उससे पहले गुरु महाराज के द्वारा इनको आचार्यपद पर आसीन किया गया। दो-तीन वर्ष बाद उनके पास समाज के कुछ वरिष्ठ विद्वान जो मुनि के कभी दर्शन करना पसंद नहीं करते थे और कहते थे कि पंचमकाल में मुनि होते ही नहीं हैं। आपने नाम सुना होगा वह विद्वान थे- पण्डित कैलाशचन्द्र शास्त्री। जिन्होंने बड़े-बड़े ग्रंथों की टीकायें आदि की हैं, तथा धवला आदि ग्रंथों और अनेक ग्रंथों का संपादन किया है। मूलचंद्र जी लुहाड़िया जो आचार्यश्री के पास आज भी आते हैं और उस समय भी आते थे। इन्होंने कैलाशचन्द्र जी से कहा कि यहाँ किशनगढ़ में एक मुनि महाराज विराजमान हैं, जिनका एक बार आप दर्शन करने आ जाओ। लेकिन वो आना नहीं चाह रहे थे, वे कह रहे थे- मुझे नहीं आना है, मुझे बिलकुल भी श्रद्धा नहीं है। जैनधर्म का प्रकाण्ड विद्वान् कह रहा है ऐसा कोई मुनि आजकल हो ही नहीं सकता। एक बार पण्डित कैलाशचन्द्र जी को जबर्दस्ती बुलाया गया किशनगढ़ में। उन्होंने लुहाड़िया जी से कहा- मैं सिर्फ दो घंटे के लिए आ रहा हूँ। इससे अधिक मेरा समय खराब मत करना। आपके आग्रह पर आ रहा हूँ, बहुत दिनों से आपका आग्रह था। वे आए और आचार्यश्री के चरणों में नमोस्तु करके बैठ गए। आचार्य महाराज अपना स्वाध्याय करते रहे, जो कार्य कर रहे थे वो करते रहे। उन्होंने नहीं देखा कि बहुत बड़े पण्डित जी आए हैं और नहीं देखेंगे तो पण्डित जी का अपमान हो जाएगा। आचार्य महाराज अपना स्वाध्याय करते रहे, जब स्वाध्याय पूर्ण हो गया तो देखा कि सामने दो पण्डित जी बैठे हैं। तब लुहाड़िया जी ने कहा कि ये जैनजगत के वरिष्ठ विद्वान् हैं पण्डित कैलाशचन्द्र जी शास्त्री। आपके दर्शन हेतु आए हैं। आचार्यश्री ने कहा- ठीक है 'ॐ नमः' आशीर्वाद और वह उठ करके अपनी चर्या के लिए चले गए। उन दो घण्टों में उस व्यक्ति ने उनके व्यक्तित्व को इस तरह निहारा कि वह व्यक्ति उस शहर में पण्डित जी

के पास ३ दिन तक रुका। जो केवल दो घंटे के लिए उनके दर्शन करने आया था, वो उन आचार्य महाराज की चर्चा से इतना प्रभावित हुआ कि ३ दिन उनके पास बैठ करके, शंका- समाधान करके ही वापिस गया। हम समझते हैं कि यह ज्ञान का ही अतिशय है। ललितपुर, जबलपुर सागर आदि स्थानों में आचार्यश्री के सान्निध्य में सब पण्डितों के सामने बड़ी-बड़ी वाचनार्थें हुई हैं। उन वाचनाओं को देखने का हमको तो सौभाग्य नहीं मिला, लेकिन जब पढ़ा सुना और फोटो आदि भी देखे, जिनमें पचासों विद्वान् एक साथ बैठे हैं और षट्खण्डागम जैसे महान् ग्रंथों की वाचना हो रही है और उस वाचना के बाद आचार्य महाराज के प्रवचन हो रहे हैं। सारा ज्ञान का जगत उनके चरणों में नतमस्तक हो रहा है। बड़े-बड़े विद्वान् पण्डित उनके चरणों में बैठकर अध्ययन कर रहे हैं। यह देखकर मुझे लगा कि इससे बड़ा ज्ञान का अतिशय और क्या हो सकता है?

### निर्वाण का अतिशय

चार कल्याण जैसे महापुरुष के अतिशय तो हो गए, अब आगे की बात हम नहीं करेंगे। हम तो यह चाह रहे हैं कि आचार्य महाराज का निर्वाण कभी हो ही नहीं। क्या कहना उनकी साधना और आराधना का? कभी-कभी ऐसे भाव आ जाते हैं, भक्तिवश आ जाते हैं, मूर्खतावश आ जाते हैं। आप भी उसको मूर्खतावश ही समझ लेना। जैसे आप लोग कहते हो अपने बेटों से कि हमारी उम्र भी तुम्हें लग जाए। ऐसा भी कभी-कभी भाव आता है कि आचार्य महाराज इतनी प्रभावना कर रहे हैं और मेरे द्वारा तो इतनी प्रभावना हो नहीं सकती अतः मेरी उम्र भी उनको लग जाए। हम ऐसी भावना तो कर ही सकते हैं, यदि यह अतिशय हो जाए तो शायद हमारा भी कई भव्यों के कल्याण में निमित्तपना होने से यह जीवन सार्थक हो जाए।

प्रस्तुति

ब्र. मनोज जैन ( लल्लन ), जबलपुर

## श्री अभिनन्दन-जिनस्तवन

प्राचार्य पं० निहालचन्द्र जैन, बीना

अनन्त ज्ञान सुख राशि गुणों के  
शीर्ष शिखर पर राजित होकर  
अभिनन्दन सार्थक नाम किया है।  
क्षमासखी दयाबधू के स्वामी  
अंतरंग बहिरंग परिग्रह से निःसंग,  
योगस्थ समाधि धर्मध्यान  
फिर शुक्ल ध्यान अन्तर्यामी ॥ १६ ॥  
जड शरीर जिसके निमित्त से,  
कर्म बन्ध व सुख दुःख पीड़ा।  
यह मेरा मैं इसका स्वामी-  
पर मैं मिथ्या प्रीति सुहायी।  
क्षणभंगुर ज्ञेयों में-  
स्थिरता का स्वप्न संजोया।  
भ्रमित जीव जगती को, तुमने  
सही तत्त्व का रहस्य बताया ॥ १७ ॥  
श्री अभिनन्दन ने यह परमार्थ बताया  
कि क्षुधा-तृषा का दुःख

भोजन पान ग्रहण करने से  
मिलता नहीं कभी छुटकारा।  
इन्द्रिय विषयों के क्षरण सुखों से-  
देह और देही स्थिर नहीं रह पाया ॥ १८ ॥  
आसक्त-पुरुष, आसक्ति-दोष से,  
राज-दण्ड, भय के विधान से,  
अकरणीय कार्यों से बचता।  
फिर भी यह पुरुष लोक में,  
क्यों आसक्त विषय सुख में है?  
जगत जीव को, यह सम्बोधा जिनेन्द्र ने ॥ १९ ॥  
आसक्ति का यह अनुबन्धन,  
जिससे जनित वृद्धि तृष्णा की।  
संतापित करता जन जन को,  
भला कभी शाश्वत हैं अल्प-विषय-सुख?  
हे अभिनन्दन!  
शरण आप हैं सत्पुरुषों के।  
श्रेयस मंगल धर्म आपका ॥ २० ॥

# सुन समझ और पहिचान : एक चिन्तन

डॉ० पं० पन्नालाल जैन, साहित्याचार्य

संसार एक बीहड़ वन के सामन है, इसमें यह जीव अनादिकाल से दिग्भ्रान्त मानव की तरह भ्रमण कर रहा है। नरक, तिर्यच, मनुष्य और देवों की चौरासी लाख योनियों में निरन्तर भटकते रहने पर भी आज तक इसे निवृत्ति का मार्ग नहीं मिला। जब अन्तर्दृष्टि से विचार करते हैं, तब समझ में आता है कि यह जीव मोहरूपी मदिरा का पानकर उसके मद में आपा पर को भूल रहा है। में कौन हूँ? इसका इसे पता नहीं और शारीरिक बाह्य पदार्थों को अपना मान उनके अर्जन संरक्षण तथा विनाश आदि के समय घोर संक्लेश का अनुभव करता हुआ निरन्तर दुःखी रहता है। एकेन्द्रिय से लेकर असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय तक की ऐसी दशा है, जिसमें ज्ञान की शक्ति अत्यधिक तिरोभूत रहती है और उसके कारण यह जीव हेयोपादेय का ज्ञान प्राप्त नहीं कर पाता, परंतु संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याय, ऐसी पर्याय है कि, जिसमें मन का सद्भाव रहने के कारण इस जीव में हेयोपादेय का विज्ञान विशेष रूप से प्रकट हो जाता है। संज्ञी पञ्चेन्द्रिय पर्याय, तिर्यञ्च, मनुष्य, देव और नरक इन चार गतियों में होती अवश्य है, परन्तु मनुष्य को छोड़कर अन्य गतियों में हेयोपादेय का पूर्ण विज्ञान और तदनुकूल आचरण का होना सम्भव नहीं। मनुष्य ही, खासकर कर्मभूमि का मनुष्य ही इस कोटि का प्राणी है कि वह पूर्ण रूप में आत्मशक्ति को प्रकट कर सकता है। मनुष्य ही बहिरात्मा से अन्तरात्मा और अन्तरात्मा से परमात्मा बन सकता है। यह सच है, परन्तु आज का मानव बाह्य जगत् की चकाचौंध से विमुख रहकर अन्तर्जगत् की ओर सन्मुख नहीं हो रहा है। यह मोह मदिरा के इतने तीव्र मद में मस्त है कि उसे कर्तव्य बोध ही नहीं पाता। स्त्री पुत्र धनधान्य आदि बाह्य पदार्थों में ही इसकी दृष्टि उलझी रहती है और उन्हीं को सब कुछ समझ, उनकी इष्ट अनिष्ट परिणति में राग-द्वेष करता रहता है। इस जीव की यह दशा तब तक जारी रहती है, जब तक कि वह सम्यग्दृष्टि बनकर आप और पर को नहीं समझने लगता है। सम्यग्दर्शन के होते ही इसे आत्मा और पर का बोध हो जाता है और यह आत्मा को उपादेय तथा पर को हेय समझने लगता है। यहीं से इस जीव का कल्याण प्रारम्भ होता

है और यहीं से यह धर्म के मार्ग में विचरण करने लगता है। जिसने यह भेदज्ञान प्राप्त कर लिया वह अर्ध-पुद्गल-परावर्तन से अधिक काल तक संसार में भ्रमण नहीं कर सकता आचार्य अमृतचन्द्र ने लिखा है कि-

**भेदविज्ञानतः सिद्धाः सिद्धा ये किल केचन।  
अस्यैवाभावतो बद्धा बद्धा ये किल केचन॥**

आज तक जितने सिद्ध हुए हैं, वे सब भेदविज्ञान से ही सिद्ध हुए हैं और जितने संसार में बद्ध हैं वे सब भेदविज्ञान के अभाव से ही बँधे हुए हैं। शरीर जुदा है, आत्मा जुदा है, रागादिक विकार जुदे हैं आत्मा की विज्ञानघन परिणति जुदी है। यह सब भेदविज्ञान ही है। इसके होते ही परपदार्थ से इसका राग घटने लगता है। परपदार्थ में जो राग होता है, उसका मूल कारण आत्मवस्तु का अज्ञान है। आत्मा सुख का भण्डार है, अनन्तज्ञान का पुञ्ज है, अनन्त बल-वीर्य आदि का निकेतन है, परन्तु कितना आश्चर्य है कि यह प्राणी अनादि अविद्या-रूपी दोष से उत्पन्न चार संज्ञारूपी ज्वर से आतुर होकर आत्मज्ञान से विमुख हो दर-दर का भिखारी हो रहा है। वीतराग सर्वज्ञदेव संसार के इन भूले भटके प्राणियों को सचेत करते हुए कहते हैं कि हे भोले प्राणी! असली शक्ति को पहिचान। तू 'क्यों' अपनी निधि को भूलकर दरिद्र हुआ इधर-उधर भटकता फिर रहा है। जिन जीवों ने सर्वज्ञदेव की इस वाणी पर ध्यान दिया वे सुमार्ग पर आ गए। और शीघ्र ही संसार से संतरण पा गए।

यह संसार का मार्ग-विषय कषाय की पूर्ति का मार्ग तत्काल भले ही सुख का कारण मालूम हो, परंतु इससे यथार्थ सुख की प्राप्ति नहीं होती यह निश्चय है। उससे जो सुख होता है वह सुखाभास है और कुछ ही समय बाद नष्ट होनेवाला है। जिसे आत्म बोध प्रगट हुआ है ऐसा जीव सप्तम नरक का नारकी रहकर भी जिस आत्मीय सुख का अनुभव करता है वह आत्म बोध से विमुख नवम ग्रेवेयक के अहमिन्द्र को भी सुलभ नहीं है। आत्मज्ञानी जीव का सुख दूसरा है और मिथ्या-ज्ञानी जीव का सुख दूसरा है।

आचार्यों ने कहा है कि यदि तुझमें काल दोष के कारण चारित्र धारण करने की शक्ति प्रगट नहीं हुई

है तो चरित्र मत धारण कर किंतु आत्माज्ञान तो प्राप्त कर ले। आत्मज्ञान के प्रकाश में फिर तुझे चरित्र धारण करना दुर्भर नहीं रह जाएगा। इस युग में श्रद्धा का संभालना ही कठिन कार्य है जिसने इसे संभाल लिया उसने धर्म का मार्गक प्राप्त कर लिया। वह मोक्ष गामी बन गया और जिसने इसे नहीं प्राप्त कर पाया वह मुनि होकर भी अधर्मा है संसार मार्गी है। आचार्यों ने कहा है कि-

अपनी प्रज्ञा रूपी छैनी को इस सावधानी से चलाओ कि तुम्हारा चैतन्य भाव जुदा हो जावे और ज्ञानावरणादि द्रव्य कर्म तथा रागादिक भाव कर्म जुदा हो जावें। अपना अंश पर में न जावे और पर का अंश अपने में न आवे, यही परम निपुणता है। जिसमें यह निपुणता आ गई वह मात्र अष्ट-प्रवचनमातृका रूप जघन्य श्रुतज्ञान होने पर भी अन्तर्मूर्हत बाद केवलज्ञान प्राप्त कर सकता है और जिसमें पूर्वोक्त निपुणता नहीं आई, वह ग्यारह अंग नौ पूर्व का पाठी होने पर भी केवलज्ञान से बहुत दूर रहता है। जैनधर्म में बहुज्ञानी के लिए उतना सम्मान नहीं है, जितना कि आत्मज्ञानी के लिए है। इसीलिए कुन्दकुन्द महाराज ने कहा है कि जिसने आत्मा को जान लिया उसने सबको जान लिया और जिसने आत्मा

को नहीं जाना उसने कुछ भी नहीं जाना। लेख का सार यह है-

आत्मा अनन्त आलोक का पुञ्ज और अक्षय सुख का भण्डार है। वह निर्मोह है, उसमें न राग है न द्वेष, वह तो आकाश की तरह निर्लेप और स्फटिक की तरह स्वच्छ है। उपाधि के सन्निधान से स्फटिक की स्वच्छता रक्त, पीत आदि रूप परिणत अवश्य हो जाती है, पर उसे उसका स्वभाव नहीं कहा जा सकता। उसी प्रकार मोह के सन्निधान से संसारी आत्मा की रागद्वेष रूप परिणति अवश्य हो रही है पर वह उसका स्वभाव नहीं कहा जा सकता। स्वभाव का भी कभी नाश होता है? तू अपने स्वरूप को भूल बाह्य पदार्थों को सुख-दुख का कारण मानकर व्यर्थ ही दुखी हो रहा है। जड़ की सेवा करते-करते अनन्त काल व्यतीत हो चुका पर आज तक वह तेरा नहीं हुआ और न ही तुझे उससे कुछ सुख प्राप्त हो सका। तब क्यों उसके पीछे पड़ रहा है सुन, समझ और अपने आपको पहचान।

साहित्याचार्य डॉ० पन्नालाल जैन  
अभिनन्दन ग्रन्थ (५/२५-५/२६)  
से साभार

## उठा कर्म की ध्वजा हाथ में

मनोज जैन मधुर, भोपाल

तट पर मत कर शोर  
जलधि में डूब  
उतर कर मोती ला।  
हासिल हुआ यहाँ  
कब किसको  
बिना किए कुछ बतला दे।  
उठा कर्म की ध्वजा  
हाथ में  
चल आलस को जतला दे।  
भाग्यवाद की  
मन समझाने  
मत मंदिर से पोथी ला।  
छोड़ सहारों  
को पीछे तू  
चल पड़ पथ पर एकाकी।

तू चाहे तो  
ला सकता है  
धरती पर नभ की झाँकी।  
सुविधाएँ दौड़ीं  
आएँगी।  
पहले खुशियाँ छोटी ला।  
खुली चुनौती  
दे अम्बर को  
तू मन में निज साहस से।  
छू कर दुनिया  
सोना कर दे  
तू दृढ़ता के पारस से।  
कर सपने साकार  
नयन में  
विजयश्री की चोटी ला।



**प्रश्न :** पूर्व संचित कर्मों के उदय से रागद्वेष भाव होते हैं और रागद्वेष से नये कर्म बँधते हैं, यह क्रम बीज-वृक्ष की तरह अगर अनादि से चला आ रहा है, तो इसका उच्छेद तो कभी होने का नहीं है।

**उत्तर :** आगम वाक्य ऐसा है-

दग्धे बीजे यथात्यन्तं प्रादुर्भवति नाङ्कुरः।

कर्मबीजे तथा दग्धे न रोहित भवाङ्कुरः॥

**अर्थ-** जैसे जले हुए बीज में बिल्कुल भी अंकुर पैदा नहीं होता है, उसी प्रकार कर्मरूपी बीज के जला देने पर उससे भी भवांकुर उत्पन्न नहीं होता है। तात्पर्य इसका यह हुआ कि जैसे किसी एक बीज के किसी वक्त दग्ध कर देने पर उसकी आगामी काल में होने वाली बीज-वृक्ष की शृंखला समाप्त हो जाती है, उसी प्रकार सम्यग्दृष्टि जीव कर्मों के उदयकाल में अपने विवेक से इष्ट विषयों में आसक्ति भाव और अनिष्ट विषयों में विषाद भाव नहीं करता है, तब उसके नये कर्मों का बन्ध नहीं होने और पुराने कर्मों का उदय हो निर्जर जाने से उसके भी फिर भावकर्म-द्रव्यकर्म की शृंखला टूट जाती है। क्योंकि केवल पूर्व कर्म के फल का भोगना ही नये कर्मों का बंधक नहीं होता, किन्तु कर्मों के भोगकाल में जो नूतन रागादि भाव उत्पन्न होते हैं, उनसे बन्ध होता है।

मन, वचन, काय इन तीनों की या इनमें से किसी एक की क्रिया से आत्मा में उत्पन्न होनेवाली हरकत को जैनदर्शन में योग नाम से कहा है (जो ऐसी हरकत नहीं होने देता अर्थात् जो तीन गुप्तियों का धारी है वह योगी कहलाता है)। इस योग के द्वारा कर्मण वर्गणाओं का आत्मा से सम्बन्ध होने के लिये आकर्षण होता है। जिस प्रकार चुम्बक में लोहे को अपनी तरफ खींचने का स्वभाव होता है, उसी प्रकार संसारी जीव में योग के प्रभाव से कर्मण पुद्गलों को अपनी तरफ खींचने की शक्ति होती है और कर्मण पुद्गलों में संसारी जीव की तरफ खिंचने का स्वभाव होता है।

कर्मपुद्गलों का खिंच आकर आत्मा से सम्बन्ध करना और उनमें स्वभाव का पड़ना यह कार्य योग से होता है। यदि वे कर्म पुद्गल किसी के ज्ञान में बाधा डालनेवाली क्रिया से खिंचे हैं, तो उनमें ज्ञान के आवरण

करने का स्वभाव पड़ेगा और यदि रागादि कषायों से खिंचे हैं, तो चारित्र के नष्ट करने का स्वभाव पड़ेगा। इसे ही प्रदेशबंध और प्रकृतिबंध कहते हैं। योग से सिर्फ इतना ही काम होता है। कर्मों का आत्मा के साथ अमुक काल तक टिके रहना और अपना फल आत्मा को पहुँचाना जिसे कि स्थितिबन्ध और अनुभागबन्ध कहते हैं यह काम अकेले योग का नहीं है, योग के साथ होनेवाली कषायों का है। कषायों के बिना कर्मपरमाणु आत्मा में टिकते नहीं हैं। जैसे आते हैं, वैसे ही चले जाते हैं। जैसे एक स्तम्भ पर यदि सच्चिकण वस्तु तैलादि लिपटे हुए हों तो वायु से उड़कर आई धूलि स्तम्भ पर चिपट जाती है। वरना चिपटती नहीं है, स्तम्भ का स्पर्शमात्र होकर वह गिर पड़ती है। स्तम्भ पर जितना हलका-गहरा चप लगा होगा, उसी माफक धूलि हलकी-गहरी चिपक सकेगी। उसी तरह यदि कषाय तीव्र होगी, तो कर्म जीव के साथ बहुत समय तक बँधे रहेंगे और फल भी तीव्र देंगे। यदि कषाय हल्की होगी तो कर्म कम समय तक बँधे रहेंगे और फल भी कम देंगे।

कर्मों के स्वभाव आठ प्रकार के हैं, इस कारण उन-उन स्वभाव के रखनेवाले कर्मों के नाम भी वैसे ही रख दिये गये हैं। वे नाम इस प्रकार हैं ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अंतराय।

१. **ज्ञानावरण कर्म-** जीव के ज्ञानगुण को पूर्णतः प्रगट नहीं होने देता है। इसी की वजह से अलग-अलग जीवों में ज्ञान की हीनाधिकता पाई जाती है।

२. **दर्शनावरण कर्म-** जीव के दर्शनगुण को ढाँकता है।

३. **वेदनीय कर्म-** जीव को सुख-दुःख का अनुभवन कराता है।

४. **मोहनीय कर्म-** मोहित कर देता है, मूढ़ बनाता है। इसके दो भेद हैं, एक वह जो जीव को सच्चे मार्ग का भान नहीं होने देता, इसका नाम दर्शन-मोहनीय है। दूसरा वह जो सच्चे मार्ग का भान हो जाने पर भी उस पर चलने नहीं देता।

५. **आयु कर्म-** यह किसी अमुक समय तक जीव को किसी एक शरीर में रोके रखता है। इसके

छिद जाने पर जीव की मृत्यु कही जाती है।

६. **नाम कर्म**- इसकी वजह से शरीर और उसके अंगोपांग आदि की रचना होती है। चौरासी लाख योनियों में जो जीव की अनन्त आकृतियाँ हैं, उनका निर्माता यही कर्म है।

७. **गोत्र कर्म**- इसके कारण जीव ऊँच-नीच कुल का कहा जाता है।

८. **अन्तराय कर्म**- इसकी वजह से इच्छित वस्तु की प्राप्ति में रुकावट पैदा होती है।

जैन सिद्धांत में कर्मों की १० मुख्य अवस्थायें या कर्मों में होनेवाली दस मुख्य क्रियायें बतलाई हैं, जिन्हें करण कहते हैं। उनके नाम - बन्ध, उत्कर्षण, अपकर्षण, सत्ता, उदय, उदीरणा, संक्रमण, उपशम, निधत्ति और निकाचना हैं।

**बन्ध**- कर्म पुद्गलों का जीव के साथ सम्बन्ध होने को बन्ध कहते हैं। यह सबसे पहली दशा है। इसके बिना अन्य कोई अवस्था नहीं हो सकती। इसके चार भेद हैं- प्रकृतिबन्ध, स्थितिबन्ध, अनुभागबन्ध और प्रदेश बन्ध। जब जीव के साथ कर्म पुद्गलों का बन्ध होता है, तो उनमें जीव के योग और कषाय के निमित्त से चार बातें होती हैं। प्रथम, तुरन्त ही उनमें ज्ञानादिक के आवरण करने वगैरह का स्वभाव पड़ जाता है। दूसरे, उनमें स्थिति पड़ जाती है कि ये अमुक समय तक जीव के साथ बँधे रहेंगे। तीसरे, उनमें तीव्र या मन्द फल देने की शक्ति पड़ जाती है। चौथे, वे नियत तादाद में ही जीव से सम्बद्ध होते हैं।

**उत्कर्षण**- स्थिति और अनुभाग के बढ़ने को उत्कर्षण कहते हैं।

**अपकर्षण**- स्थिति और अनुभाग के घटने को अपकर्षण कहते हैं।

बन्ध के बाद बँधे हुए कर्मों में ये दोनों उत्कर्षण-अपकर्षण होते हैं। बुरे कर्मों का बन्ध करने के बाद यदि जीव अच्छे कर्म करता है तो उसके पहिले बँधे हुए बुरे कर्मों की स्थिति और फलदानशक्ति अच्छे भावों के प्रभाव से घट जाती है। इसे ही अपकर्षण कहते हैं, और अगर बुरे कर्मों का बन्ध करके उसके भाव और भी अधिक कलुषित हो जाते हैं, जिससे वह और भी अधिक बुरे काम करने पर उतारू हो जाता है, तो बुरे भावों का असर पाकर पूर्व में बँधे हुए कर्मों की

स्थिति और फलदानशक्ति और भी अधिक बढ़ जाती है, इसे ही उत्कर्षण कहते हैं। इन दोनों के कारण ही कोई कर्म जल्दी फल देता है और कोई देर में। तथा किसी कर्म का फल तीव्र होता है और किसी का मन्द।

**सत्ता**- बँधने के बाद तुरन्त ही कर्म अपना फल नहीं देता है। कुछ समय बाद उसका फल मिलना शुरू होता है। तब तक वह सत्ता में रहता है। जैसे शराब पीते ही तुरन्त अपना असर नहीं देती, किन्तु कुछ समय बाद अपना असर दिखलाती है, वैसे ही कर्म भी बँधने के बाद तुरन्त अपना फल न देकर कुछ समय तक सत्ता में रहते हैं। इस काल को जैन परिभाषा में अबाधा काल कहते हैं।

**उदय**- कर्मों के फल देने को उदय कहते हैं। यह उदय दो तरह का होता है। फलोदय और प्रदेशोदय। जब कर्म अपना फल देकर आत्मा से अलग हो जाता है तो वह फलोदय कहा जाता है और जब कर्म बिना फल दिये ही अलग हो जाता है तो उसे प्रदेशोदय कहते हैं।

**उदीरणा**- जैसे आमों को पाल में देने से वे डाल की अपेक्षा जल्दी पक जाते हैं, उसी तरह कभी-कभी कर्मों का अपना स्थितिकाल पूरा किये बिना ही फल भुगता देना उदीरणा कहलाती है। उदीरणा के लिये पहिले अपकर्षणकरण के द्वारा कर्म की स्थिति को कम करना पड़ता है। जब कोई असमय में ही मर जाता है तो उसकी अकालमृत्यु कही जाती है। इसका कारण आयु कर्म की उदीरणा ही है। स्थिति का घात हुए बिना उदीरणा नहीं होती।

**संक्रमण**- एक कर्म का दूसरे सजातीय कर्मरूप हो जाने को संक्रमणकरण कहते हैं। यह संक्रमण कर्मों के मूल भेदों में नहीं होता है, न ज्ञानावरण दर्शनावरण रूप होता और न दर्शनावरण ज्ञानावरण रूप ही। किन्तु अपने ही अवांतर भेदों में होता है, जैसे वेदनीय कर्म के दो भेदों से सातावेदनीय असातावेदनीय रूप हो सकता है और असातावेदनीय सातावेदनीय रूप हो सकता है। किन्तु आयुकर्म के लिये अपवाद है। आयुकर्म के चार भेदों में परस्पर संक्रमण नहीं होता है। जिस गति की आयु बाँधी है, नियमतः उसी गति में जाना पड़ता है। उसमें रद्दोबदल नहीं हो सकता।

**उपशम**- कर्म को उदय में आ सकने के अयोग्य

कर देना उपशमकरण कहलाता है।

**निधत्ति-** जिस कर्म की उदीरणा हो सकती हो किन्तु उदय और संक्रमण न हो सके, उसको निधत्ति कहते हैं।

**निकाचना-** जिस कर्म की उदीरणा, संक्रमण, उत्कर्षण और अपकर्षण ये चारों ही अवस्थायें न हो सकें, उसे निकाचनाकरण कहते हैं।

और भी कर्मसिद्धांत की बहुत सी बातें हैं, जो जैनकर्मसाहित्य से जानी जा सकती हैं। यहाँ विस्तारभय से नहीं लिखा जाता है।

**शंका-** कर्म जड़ (ज्ञानशून्य) होते हैं। उन्हें ऐसा बोध ही नहीं होता कि अमुक जीवों को अमुक समय पर उनकी अमुक-अमुक करणी का अमुक-अमुक फल देना है, ऐसी सूत्र में जैनों का कर्मसिद्धांत निरर्थक सा प्रतीत होता है।

**समाधान-** जड़ पदार्थ भी अपनी शक्ति और स्वभाव के अनुसार ठीक समय पर व्यवस्थित काम करते देखे जाते हैं। समुचित मात्रा में सर्दी गर्मी के मिलने पर बर्फ गिरना, बरसात होना, ठण्डक-गर्मी का पड़ना, बादलों के आपस में टकराने पर बिजली उत्पन्न होना, भूचाल-तूफान आना, ऋतुओं का पलटना आदि प्रायः सभी काम जड़ पदार्थों के अपने-अपने स्वभावानुसार ठीक समय पर अपने आप हो जाया करते हैं। कोई भी ज्ञानधारी वहाँ कुछ करने धरने नहीं पहुँचता है। हम भोजन करते हैं। हमारा काम सिर्फ आहार को पेट में पहुँचा देना होता है। आगे वह उदरस्थ आहार वगैर हमारे प्रयत्न के अपने आप अनेक क्रियायें करता है। यथायोग्य जठराग्नि के द्वारा यथायोग्य रस, रक्त, मांस, अस्थि, मज्जा, वीर्यादि बन जाते हैं। यह सब काम जड़ ही करता है कि यह प्रत्यक्ष है। यह बात निम्न गाथा में कही है-

जह पुरिसेणाहारी गहियो, परिणमई सो अणोयविहं ।  
मंसवसारुहिरादी भावे, उयरगिगसंजुत्तो ॥ १७९ ॥

समयप्राभृत

**अर्थ-** जिस प्रकार पुरुष के द्वारा खाया गया भोजन जठराग्नि के निमित्त से मांस, चरबी, रुधिरादि रूप परिणत हो जाता है, उसी प्रकार यह जीव अपने भावों के द्वारा जिस कर्मपुंज को ग्रहण करता है, उसका तीव्र, मंद मध्यम कषाय के अनुसार विविध रूप परिणमन होकर वह अनेक प्रकार से फल देता है।

आये दिन अखबारों में पूर्व जन्म की घटनायें छपती रहती हैं जिनमें कर्मों की फलप्राप्ति का भी जिकर आ जाया करता हैं। ऐसी ही एक घटना का हाल हम यहाँ लिख देते हैं-

आयरलैंड में एक चार वर्ष के बालक ने अपनी पूर्व जन्म की कथा लोगों के सामने अपने माता-पिता को बार-बार सुनाई। प्रथम तो माता-पिता का उस कथा को सुनकर विश्वास ही नहीं हुआ और यह समझा कि बालक के मस्तक में बिगाड़ हो गया है या माइंड में गर्मी बढ़ गई दिखती है, इसलिये इसका अच्छा इलाज कराना चाहिये। अनेक अच्छे-अच्छे डाक्टरों ने उस बालक के मस्तिष्क की जाँच करके कहा कि इसका मस्तिष्क पूर्णतः शुद्ध और निर्विकार हैं। जैसा उत्तम मस्तिष्क इसका है वैसा अन्य बालकों में मिलना कठिन है। तब लाचार होकर माता-पिता ने उस बालक के कथनानुसार उसके जन्मांतर के माता-पिता की खोज कराई। बालक ने जन्मांतर के अपने माता-पिता का निवास काठियावाड़ में राजकोट के पास एक ग्राम में बताया था। भारत सरकार द्वारा शोध की गई, तो उसके माता-पिता आदि के नाम, उस बालक की पूर्व जनम में मरने की तारीख, उसके बताये घर के काम सब ज्यों के त्यों मिल गये। मरण के ८½ मास बाद उस बालक ने आयरलैंड में जन्म लिया था। पूर्व जन्म में उस बालक के जीव ने एक पड़ोसी बुढ़िया की रुग्णावस्था में सेवा की थी और गरीब लोगों को वस्त्र दान में बाँटे थे। जिन वस्त्रों को वह दान में देता था, एक दिन उनमें सर्प छिपकर बैठ गया और बालक के पूर्वभव के जीव को काट खाया। उससे मरकर वह आयरलैंड में एक करोड़पति के यहाँ पैदा हुआ।

इस प्रकार कर्मसिद्धांत के विषय में जितनी युक्तियुक्त और सूक्ष्म विवेचना जैनधर्म में की गई है, वैसी अन्य धर्म में नहीं है। अनेकांतवाद, अहिंसावाद की तरह कर्मवाद भी जैनधर्म का एक खास सिद्धांत है। कर्म क्या है? क्यों बँधते हैं? बँधने के क्या-क्या कारण हैं? जीव के साथ वे कब तक रहते हैं? क्या-क्या फल देते हैं? उनसे छुटकारा कैसे हो सकता है? इत्यादि बातों का खुलासा केवल जैनधर्म में ही मिलता है और बिल्कुल वैज्ञानिक ढंग से मिलता है।

‘जैन निबन्धरत्नावली’ (भाग २) से साभार

# ज्ञातृ-पुत्र महावीर की जन्मभूमि वैशाली

महापंडित स्व० श्री राहुल सांकृत्यायन जी

प्रस्तुत लेख में महापंडित राहुल सांकृत्यायन ने प्रकाश भगवान् महावीर के जन्मस्थान के विषय में डाला है, उस पर जैनों को विशेष ध्यान देना उचित है। मुजफ्फरपुर जिले का वसाढ नामक ग्राम ही प्राचीन वैशाली और कुंडग्राम प्रमाणित हुआ है। वसाढ की खुदाई से ऐसे चिन्ह मिले हैं, जिनसे सिद्ध है कि वैशाली वहीं पर आबाद थी। चीन से जो यात्री आये, उन्होंने भी अपने यात्रावृत्तों में इसी स्थान पर वैशाली की स्थिति सूचित की है। जैन शास्त्रों से भी यह सिद्ध होता है कि वैशाली के पास ही भगवान् महावीर की जन्मभूमि कुंडग्राम अवस्थित थी। बसाढ के खण्डहरों में वैशाली, कुंडग्राम और वनीय ग्राम के स्मृति-चिन्ह रूप अवशेष बसाढ, बसुकुण्ड और बनिया, नामके ग्राम मिलते हैं। जैनशास्त्रों के निम्नलिखित अवतरणों से वैशाली और कुंडग्राम विदेह देश में अवस्थित प्रमाणित होते हैं।

“तएणं से कूणिआराया..... वसमाणे वसमाणे अगंजण वयस्स मज्झं मज्जेणं जेणेव विदेहे जणवए जेणेव वेसाली नयरी तेणेव पहारेत्थ गमणाए।” निरयावलियाओ।

इससे सिद्ध है कि अंग देश (बिहार प्रान्त का भागलपुर जिला) से चल कर विदेह देश में पहुँचा जाता था जहाँ वैशाली अवस्थित थी। ‘हरिवंश पुराण’ से भी स्पष्ट है कि कुंडग्राम विदेह देश में था और वहीं राजा चेटक की राजधानी वैशाली थी। (विदेह इति विख्यातः स्वर्ग खण्डसमः प्रियः। .... सुखाभः कुंडमाभांति नाम्ना कुंडपुरं पुरं। .... चेतश्चेटक राजस्य यास्ताः सप्तशरीरजाः अतिस्नेहा कुलं चक्रुस्तावाद्या प्रियकारिणीं। इत्यादि) श्री पूज्यपाद आचार्य भी कुंडपुर को विदेह देश में बताते हैं (भारतवास्ये विदेहकुंडपुरे) इन और ऐसे अन्य उल्लेखों से वैशाली और कुंडग्राम का विदेह देश में अवस्थित होना स्पष्ट है। बिहारवासियों ने बसाढ को भगवान् महावीर की जन्मभूमि मान कर उसका उद्धारकार्य प्रारम्भ कर दिया है और महावीर जयन्ती के दिन वहाँ उत्सव भी मनाया जाता है। किन्तु खेद है कि जैनी अभी तक यह भी निश्चित नहीं कर सके हैं कि भगवान् महावीर की जन्मभूमि कहाँ पर है? राजगृह और नालन्दा के खण्डहरों के पास बसा हुआ वड़ागाँव नामक स्थान कदापि भगवान् महावीर का जन्मस्थान नहीं हो सकता है। अतः जैनों को चाहिये कि वसाढ में ही भगवान् महावीर के जन्मस्थान तीर्थ की स्थापना करें। महापंडित राहुलजी के कथन को उन्हें व्यवहारिक रूप देना उचित है। (का०प्र०)

ईसा पूर्व पाँचवीं छठीं शताब्दि में वैशाली का गणराज्य बहुत ही शक्तिशाली राष्ट्र था। वह उत्तरीय भारत के मगध, कौसल, वत्स और अवन्ती के विशाल राज्यों से शक्ति में समकक्षता करता था। समय आया, जब राजतन्त्र के प्राबल्य के सामने गणों (प्रजातन्त्रों) का विनाश हुआ, यद्यपि ये काम होने में शताब्दियाँ लगीं और भारत का अन्तिम गण-तन्त्र यौधेय ई० चौथी शताब्दि के अन्त में लुप्त हुआ। अपने जीवन की पिछली तीन शताब्दियों में यौधेय गण का वही उच्च स्थान था, जो कि अपने समय के वैशाली के गणतन्त्र का था। गुप्तों द्वारा यौधेय गण का जब उच्छेद हुआ, वीर यौधेय अपने नगरों अग्रेया, ओस, खण्डिल आदि से निकलकर जहाँ तहाँ विखर गए, और अग्रवाल, खण्डेलवाल, ओसवाल, बर्न-वाल,

रोहतगी (रस्तोगी) आदि नामों से प्रख्यात हुए। आज भी यौधेय (हरियाना) की भूमि से निकली इन जातियों में ज्ञातृ-पुत्र महावीर की शिक्षा का आचरण या धर्म के रूप में अस्तित्व पाया जाता है। महावीर एक बलशाली जनसत्ताक गण में पैदा हुए और दूसरे गण से निकले लोगों में आज उनका धर्म सुरक्षित है। सोलह शताब्दियों तक निरंकुश स्वदेशी विदेशी राजाओं के जूये के नीचे दबता-पिसता भारत आज फिर एक विशाल प्रजातन्त्र के रूप में परिणत हो रहा है। गण-तंत्री धर्मवाले हम बौद्धों और जैनियों के लिए यह अभिमानकी बात है।

यह आकस्मिक बात नहीं है कि बुद्ध और महावीर को जन्म देनेवाले राजतन्त्र नहीं, प्रजातन्त्र थे। बुद्ध शाक्यों के प्रजातन्त्र में पैदा हुए, और महावीर वैशाली के



लिच्छवियों के प्रजातन्त्र में! लेकिन यह कितने आश्चर्य की बात है कि महावीर के अनुयायी आज उनकी जन्मभूमि को भूल गए, और वह उसे लिछुवार (मुंगेर जिला) में ले गए। लिछुवार अंग देश में है, लेकिन जैन ग्रन्थों के अनुसार महावीर को वैशालिक कहा गया। “विदेह जच्चे, विदेह सुडमाले” का वचन बतलाता है, कि उनका जन्म विदेह देश में हुआ था। विदेह और वृजि (वैशालीवाला प्रदेश) आपस में वैसा ही सम्बन्ध रखते थे, जैसा कोसल और शाक्य। एकबार कौसलराज प्रसेनजित ने बुद्ध से कहा था “भगवान भी कौसलक हैं और मैं भी कौसलक हूँ।” वस्तुतः गंगा-गण्डकी (तत्कालीन मही) कोसी और हिमालय के बीच के सुन्दर उर्वर समतल भूमिका नाम विदेह था। हाँ, भाषा की दृष्टि से एक होते हुये भी किन्हीं राजनैतिक कारणों से इस भूमि का वह भाग जो आज मुंगेर और भागलपुर जिलों के गंगा के उत्तरीय अंश के रूप में परिणत हो गए हैं- को अंगुत्तराय (आप=गंगा के उत्तर बाला अंग) कहा जाता था। यही प्रदेश गुप्तकाल में तीर भुक्ति (नदियों के तीर वाली भुक्ति= सूबा) कहा जाने लगा, जिसका ही अपभ्रंश आज का तिर्हुत शब्द है। विदेह की राजधानी मिथिला नगरी थी। काशी था देश का नाम, किन्तु पीछे उसकी राजधानी बराणसी (बराणस, बनारस) का पर्यायवाची बन गया। यही बात विदेह के साथ उलटी तौरसे हुई और वहाँ राजधानी मिथिला के नाम ने सारे देश को अपना नाम दे दिया। इसी विशाल विदेह भूमिका पश्चिमी भाग था लिच्छवि गणका वृजि देश, जिसकी राजधानी थी वैशाली। इस प्रकार ज्ञातपुत्र महावीर ‘वैशालिक’ भी थे ‘वेदेहिक’ भी थे।

भगवान महावीर को ज्ञात-पुत्र या ज्ञात-सन्तान कहा गया है। पाली में ज्ञात का रूप ‘नात’ बन गया है। नातिका (ज्ञातका) नाम का एक महा ग्राम वैशाली प्रजातन्त्र में था। वैशाली (बसाढ) और उसके आसपास अब भी एक प्रभावशाली जाति रहती है, जिसे जथरिया कहते हैं। यह भूमिहार या पछिमा ब्राह्मण जाति की एक शाखा है। जहाँ छपरा, गोरखपुर, बलिया आदि जिलों में भूमिहार के लिए ब्राह्मण का प्रयोग आश्चर्य के साथ सुना जाता था, वहाँ दरभंगा, भागलपुर आदि के मैथिल ब्राह्मण भूमिहार ब्राह्मणों को पछिमा ब्राह्मण ही नहीं कहते, बल्कि उनके साथ रोटी बेटी के सैकड़ों उदाहरण मिल सकते हैं।

जथरिया शब्द ‘ज्ञात’ से अपभ्रंश होकर बना है। इसके सिद्ध करने के लिए बहुत परिश्रम की आवश्यकता नहीं, ज्ञात से ज्ञातर फिर जातर, उपरान्त जतरिया, जथरिया। लेकिन कितने जथरियों और उनसे भी अधिक भूमिहारों की इस पर घोर आपत्ति है। वह इसलिए कि आज के जथरिया भूमिहार होने से जब कि ब्राह्मण होने का दावा करते हैं, वहाँ प्राचीन ज्ञात क्षत्रिय थे। उनके ध्यान में नहीं आता कि ऐसा भी समय था, जब कि आर्यों में ब्राह्मण-क्षत्रिय का भेद न था। एक ही पिता के दो पुत्रों में एक राष्ट्ररक्षक खड्गहस्त क्षत्रिय होता और दूसरा देवअर्चक सुवाधारी ब्राह्मण। वस्तुतः ईसापूर्व पन्द्रहवीं सदी में कुरुपंचाल की भूमि में ब्राह्मण क्षत्रिय भेद का बीजारोपण हुआ। यही दोनों जनपद थे, जिन्होंने सर्व प्रथम राजतन्त्र को स्वीकार किया। प्रजातन्त्रों ने बहुत पीछे तक इन भेदों को स्वीकार नहीं किया, न ब्राह्मणों की प्रधानता तथा उनके जातिश्रेष्ठ होने को है। ज्ञात उसी तरह के प्रजातन्त्रीय आर्य थे। आयुधजीवी आर्य होने से उन्हें क्षत्रिय भी कहा जाने लगा था, किन्तु वे वस्तुतः उन आर्यों का प्रतिनिधित्व करते थे, जिनमें ब्राह्मण-क्षत्रिय का भेद न हो पाया था। इसलिए जथरियों को ज्ञात कहे जाने से एक सीढ़ी नीचे उतरनेका भय नहीं होना चाहिए। फिर प्रजातन्त्रीय भारत में तो वह भय और भी अनावश्यक है जब कि हमें निश्चित जान पडता है, कि आगे सभी की रोटी बेटी एक होने जा रही है।<sup>1</sup>

जथरिया तरुणों में तो कितने स्वीकार करने लगे हैं कि भगवान् महावीर उन्ही के वंश के थे। लेकिन हमारे जैन भाई तो अब भी इसे मानने के लिए तैयार नहीं हैं, कि वैशाली (बसाढ) ही वह नगरी थी, जिसके उपनगर कुण्डग्राम में वर्द्धमान ने जन्म लिया था, जिन्होंने मानव दुर्वृत्तियों पर जय प्राप्त कर ‘जिन्’ बन, अपनी महती वीरता के लिए महावीर नाम पा प्रसिद्ध हुए। यह बड़े आश्चर्य की बात है कि जैनपरम्परा में भगवान् महावीर के निर्वाणस्थान और जन्मस्थान दोनों को भुला कर उनकी जगह नये स्थानों को स्वीकार किया। कुण्ड ग्राम को वैशाली और विदेह से हटा कर अंग में (लिछुआर) और निर्वाण स्थान मल्लों की पावा (जो पडरौना के पास पपौर हो सकती है) से हटा कर मगध के आधुनिक स्थान पावापुरी में ले गए।

वैशाली के निवासी जागृत हुए हैं। भारतीय प्रजातन्त्र

में अपने समय के अत्यन्त बलशाली वैशाली प्रजातन्त्र के ऐतिहासिक गौरव को फिर से सजीव रूप में हमारे सामने लाने के लिये वह प्रयत्न कर रहे हैं। पाँच वर्ष से वे महावीर जयन्ती का मेला मनाने लगे हैं, और चेत मास के शुक्लपक्षीय त्रयोदशी को हजारों नरनारी वहाँ इकट्ठा हो अपने पुण्य इतिहास के प्रति श्रद्धा प्रसून अर्पित करते हैं। भारतीय प्रजातन्त्रों में यही एक प्रजातन्त्र था, जिसकी शासनव्यवस्था और पार्लामेन्टरी कार्यवाही

हमें मालूम हैं, क्योंकि बुद्ध इस शासनप्रणाली से इतने प्रभावित हुए थे, कि अपने संघ के नियमों के बनाने में उन्होंने वैशालीव्यवस्था का आश्रय लिया था।

जिस तरह बुद्ध की जन्मभूमि लुम्बिनी को अशोक से लेकर आज तक के बौद्ध न भुला सके, उसी तरह जैन बन्धुओं को महावीर की जन्मभूमि वैशाली को भुलाना नहीं चाहिए।

१. यह भविष्य बतायेगा। का०प्र०

### श्री अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन विद्वत्परिषद् (रजि.) के त्रैवार्षिक चुनाव सम्पन्न

बुरहानपुर (म.प्र.), दिगम्बर जैन विद्वानों की शीर्षस्थ संस्था-श्री अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन विद्वत्परिषद् (रजि.) के त्रैवार्षिक चुनाव दि. २८ सितम्बर, २००९ को श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र चमत्कार जी, आलनपुर, सवाईमाधोपुर (राज.) में डॉ० शीतलचन्द्र जैन (जयपुर) की अध्यक्षता में सम्पन्न हुए, जिसमें सर्वसम्मति से जैन विद्या के मूर्धन्य मनीषी डॉ० जयकुमार जैन (मुजफ्फरनगर) को अध्यक्ष एवं पार्श्व ज्योति के प्रधान सम्पादक एवं प्रखर वक्ता डॉ० सुरेन्द्र कुमार जैन क्रमशः तीसरी बार महामंत्री पद पर चुने गये हैं।

निर्वाचन की इस शृंखला में उपाध्यक्ष-डॉ० नेमिचन्द्र जैन (खुरई), कोषाध्यक्ष-पं० अमरचन्द्र जैन (कुण्डलपुर), डॉ० नरेन्द्रकुमार जैन (गाजियाबाद), उपमंत्री-डॉ० ज्योति जैन (खतौली), प्रकाशन मंत्री- डॉ० सनतकुमार जैन (जयपुर) एवं कार्यकारिणी समिति सदस्य के रूप में सर्वश्री डॉ० रमेशचन्द्र जैन (बिजनौर), डॉ० फूलचन्द्र जैन 'प्रेमी' (वाराणसी), डॉ० शीतलचन्द्र जैन (जयपुर), डॉ० लालचन्द्र जैन (आरा), डॉ० कमलेशकुमार जैन (वाराणसी), डॉ० वृषभप्रसाद जैन (लखनऊ), डॉ० विजय कुमार जैन (लखनऊ), डॉ० हरिशचन्द्र जैन (मोरेना), डॉ० ज्योतिबाबू जैन (उदयपुर), पं० महेश जैन (सांगानेर), शैलेश जैन शास्त्री (मदनगंज-किशनगढ़), सुनील जैन संचय (ललितपुर), पं० अशोक जैन शास्त्री (इन्दौर) एवं पं० पवन कुमार जैन शास्त्री (सनावद) को चुना गया।

निर्वाचन के उपरान्त सभी पदाधिकारियों एवं सदस्यों ने तीर्थ क्षेत्र पर विराजमान प.पू. मुनिपुङ्गव श्री सुधासागर जी महाराज, पू. क्षुल्लक श्री गंभीरसागर जी महाराज एवं पू. क्षुल्लक श्री धैर्यसागर जी महाराज के दर्शन किए और शुभाशीर्वाद प्राप्त किया। शपथ ग्रहण एवं पूर्व अध्यक्ष डॉ० शीतलचन्द्र जैन द्वारा नवनिर्वाचित अध्यक्ष को अपना 'वैज' प्रदानकर कार्यभार सौंपा एवं शाल ओढ़ाकर सम्मान किया। नवनिर्वाचित अध्यक्ष डॉ० जयकुमार जैन ने अपने पूर्व अध्यक्षों अनेकान्त मनीषी डॉ० रमेशचन्द्र जैन, डॉ० फूलचंद्र प्रेमी एवं डॉ० शीतलचन्द्र जैन का तिलक, पुष्पहार एवं शाल ओढ़ाकर सम्मान किया। अनन्तर जैन समाज की ओर से 'सर्वार्थसिद्धि अनुशीलन राष्ट्रीय विद्वत्संगोष्ठी' के पुण्यार्जक सर्वश्री सूरजमल, मोहनलाल, नेमीचन्द्र, रमेशचन्द्र, ओमप्रकाश, भागचन्द्र, राजेन्द्र कासलीवाल (भसावड़ी), सवाईमाधोपुर एवं संयोजक द्वय- डॉ० वृषभप्रसाद जैन (लखनऊ), प्रा. अरुण कुमार जैन, चातुर्मास समिति की ओर से श्री सोहन बज ने सभी पदाधिकारियों एवं कार्यकारिणी समिति सदस्यों का सम्मान किया।

समारोह का संचालन डॉ० सुरेन्द्र कुमार जैन (महामंत्री) ने किया। इस अवसर पर अपना शुभाशीर्वाद देते हुए आध्यात्मिक संत मुनिपुङ्गव श्री सुधासागर जी महाराज ने कहा कि- बोधि दुर्लभ भावना को पाने के लिए ही हम सब प्रयासरत हैं। चाहे विद्वान् हों या साधु अतः हमें ज्ञान प्राप्ति के लिए निरंतर प्रयत्न करना चाहिए। विद्वत्परिषद् ने अच्छे कार्य किये हैं और आगे भी यह अच्छे कार्य करे, इसके लिए हमारा भरपूर आशीर्वाद है।

# भरतेशवैभव की अप्रामाणिकता

डॉ० शीतलचन्द्र जैन

भरतेशवैभव काव्यग्रन्थ रत्नाकर वर्णी द्वारा रचित है। यह ग्रन्थ भारतवर्षीय अनेकान्त विद्वत् परिषद् द्वारा सन् १९९८ में द्वितीय संस्करण के रूप में प्रकाशित हुआ। यही संस्करण वर्तमान में उपलब्ध होता है।

इस ग्रन्थ का आद्योपान्त अध्ययन करने पर इसमें बहुत से ऐसे प्रसंग देखने में आये जो भरत चक्रवर्ती के चरित्रचित्रणवाले मुख्यतया आचार्य जिनसेन द्वारा रचित आदिपुराण या अन्य किसी भी ग्रन्थ में उल्लिखित नहीं हैं। इस सम्बन्ध में कुछ बिन्दुओं पर विचार किया जाता है।

१. ग्रन्थ की प्रस्तावना में कहा गया है कि इस ग्रन्थ में कवि ने कर्नाटक कविताओं में भरत चक्रवर्ती का स्वतंत्र जीवन चरित्र चित्रित किया गया है। इससे यह स्पष्ट है कि जैन शासन में जो आगमपरम्परा है, उसके अनुसार यह ग्रन्थ नहीं लिखा गया। आचार्यों के द्वारा जो भी ग्रन्थ रचे जाते हैं, उनके प्रारम्भ में यह कहा जाता है कि जैसा तीर्थंकर प्रभु ने अथवा गणधर भगवान् ने अथवा विभिन्न आचार्यों ने कथन किया है, वैसा ही मैं कथन कर रहा हूँ। परन्तु इसमें ऐसा कुछ भी नहीं कहा है। अतः 'स्वतंत्र जीवन चरित्र' होने से यह ग्रन्थ कवि की अपनी कल्पना मात्र है, इसे हम आगम की श्रेणी में या प्रथमानुयोग के रूप में ग्रहण नहीं कर सकते।

२. इसके रचयिता रत्नाकर को शृंगारकवि उपाधि प्राप्त थी। इसकी विद्वत्ता को देखकर राजकन्या मोहित हो गई, रत्नाकर भी उसके मोहपाश में आ गया। वह उस पर आसक्त होकर शरीर के वायुओं को वश में करके वायुनिरोधयोग के बल से महल में अदृश्य पहुँचकर उस राजपुत्री के साथ प्रेम करता था। यह बात धीरे-धीरे राजा को मालूम होने पर राजा ने उसे पकड़ने का प्रयत्न किया। उस दिन रत्नाकर ने अपने गुरु महेन्द्रकीर्ति से पंचाणुव्रत को लेकर अध्यात्म तत्त्व में अपने आप को लगाने का प्रारम्भ किया।

\* उपर्युक्त प्रकरण से स्पष्ट है कि रत्नाकर वर्णी शृंगाररस के कवि थे और उनका चाल-चलन सही नहीं था। ऐसे व्यक्ति की रचना को हम आगम कैसे कह

सकते हैं? वीतरागी पूर्वाचार्यों द्वारा लिखित शास्त्र ही जैनागम कहे जाते हैं। ऐसे रागी-द्वेषी कवि की रचना प्रामाणिक नहीं हो सकती।

३. प्रस्तावना में कहा है कि रत्नाकर ने अपने भरतेश वैभव को भी हाथी के ऊपर रखकर जुलूस निकालने के लिए भट्टारक जी से प्रार्थना की। तब भट्टारक जी ने कहा कि उसमें दो-तीन शास्त्रविरुद्ध दोष हैं। इसलिए वैसा नहीं कर सकते हैं। तब रत्नाकर ने इस विषय पर उनसे आग्रह किया एवं कुछ अनबन सा हुआ, तो उन्होंने सात सौ घर के श्रावकों को कड़ी आज्ञा दे दी कि इस रत्नाकर को कहीं भी आहार नहीं दिया जाय। तब रत्नाकर अपनी बहन के घर भोजन करते हुए जिनधर्म से रूसकर 'आत्मज्ञानी को सभी जाति, कुल बराबर हैं', ऐसा समझकर लिंगायत बन गया और वहाँ पर वीरशैवपुराण, वसवपुराण, सोमेश्वरशतक आदि की रचना की।

पाठक स्वयं निर्णय करें कि क्या ऐसे विकृतचरित्र-वाला व्यक्ति आगमाश्रित ग्रन्थ का रचयिता हो सकता है? जिस लेखक की जैनधर्म पर श्रद्धा ही न हो, उसका लिखा ग्रन्थ कभी प्रामाणिक नहीं हो सकता।

४. प्रस्तावना के द्वितीय कथानक के अनुसार एक बार रत्नाकर अपने को अपमानित समझकर चला गया। जाते-जाते एक नदी को पार कर रहा था, तब भक्तों ने शंभुपूर्वक प्रार्थना की, तो भी 'मुझे ऐसे दुष्टों का संसर्ग नहीं चाहिये। मैं आज ही इस जैनधर्म को तिलांजलि देता हूँ।' यह कहकर नदी में डूब गया और एक पर्वत पर चला गया। बाद में राजा के आग्रह पर काव्य में रस दिखाने के लिए भरतेशवैभव की रचना की।

इस कथन से यह स्पष्ट है कि रत्नाकर ने जैनधर्म को तिलांजलि देकर मात्र राजा को प्रसन्न करने के लिए अपनी मर्जी के अनुसार इस ग्रन्थ की रचना की थी। अतः ऐसा ग्रन्थ कभी प्रामाणिक हो ही नहीं सकता।

५. प्रस्तावना (पृ. १९) में कहा गया है कि इस ग्रन्थ की रचना में कवि ने अन्य कवियों का अनुकरण नहीं किया है। जो वर्णन उसे स्वयं को पसन्द नहीं आया था, उसे और ढंग से जहाँ वर्णन करना चाहता था, वहाँ

तत्क्षण उसे बदलकर पाठकों को अरुचि उत्पन्न नहीं हो, इस ढंग से वर्णन करता है।

इस प्रकरण से स्पष्ट है कि रत्नाकर ने इस ग्रन्थ को मात्र लोकप्रसिद्धि के लिए रचा था, तथ्यप्रकाशन के लिए नहीं।

यहाँ तक रचयिता कवि की अप्रामाणिकता का वर्णन किया गया, अब ग्रन्थ के उन प्रसंगों का वर्णन किया जाता है जो आगम सम्मत नहीं हैं।

१. भाग १ पृ. १४१ पर कहा है कि भरतेश की रानियों की संख्या ९६ हजार है, जब कि अभी महाराजा भरत चक्रवर्ती नहीं बने थे। यह प्रकरण बिल्कुल आगम-सम्मत नहीं है।

२. पृ. १७ (भाग १) पर लिखा है कि महाराजा भरत ने आत्मप्रवाद नाम के ग्रन्थ की रचना की थी। यह प्रकरण किसी भी पुराण से मेल नहीं खाता।

३. भाग १ (पृ. १६८) में लिखा है कि वे रानियाँ भरतेश के द्वारा निर्मित अध्यात्मसार को पढ़ रही हैं। अर्थात् इस ग्रन्थ की रचना भी महाराजा भरत ने की थी। यह प्रकरण भी बिल्कुल गलत है।

४. भाग १ के पृ. १६९ पर लिखा है कि कभी वे शुद्धोपयोग में मग्न होते हैं, तो कभी शुद्धोपयोग के साधनीभूत शुभोपयोग का अवलंबन लेते थे। अर्थात् रत्नाकर कवि को इतना भी आगमज्ञान नहीं था कि क्या कोई राजा राज्य करते हुए शुद्धोपयोग में मग्न हो सकता है?

५. भाग १ के पृ. १७१ पर कहा है कि भरतेश ने सबसे पहले मंदिर में शासनदेवताओं को अर्घ्य प्रदान कर श्री भगवन्त का स्तोत्र व जप किया। यह कथन किसी भी शास्त्र से मेल नहीं खाता। भरतेश के काल में शासनदेवताओं की कल्पना ही नहीं थी।

६. भाग १ के पृ. १७९ पर लिखा है कि सम्राट भरत ने जल, चन्दन आदि अष्ट द्रव्यों से अपनी माता की पूजा की। यह कथन एकदम आगमविरुद्ध है।

७. भाग १ के पृ. २५० पर लिखा है कि चक्रवर्ती के रत्नों का उपभोग वे स्वतः ही कर सकते हैं। यह भी लिखा है कि कुछ लोग ऐसा वर्णन करते हैं कि भरतेश्वर ने जयकुमार, जो सेनापति रत्न था, उसे भेजकर उसके हाथ से विजयार्द्ध के वज्रकुमार का स्फोटन कराया। परन्तु यह ठीक नहीं है।

इस सम्बन्ध में जब हम आदिपुराण पर्व ३१ के श्लोक १२२ को देखते हैं, तो उसमें लिखा है- 'अश्वरत्न पर बैठे हुए सेनापति ने 'चक्रवर्ती की जय हो' इस प्रकार कहकर दण्डरत्न से गुफाद्वार का ताड़न किया, जिससे बड़ा भारी शब्द हुआ।' इस आदिपुराण के कथन को जो महान् आचार्य द्वारा लिखित है, रत्नाकर कवि ने गलत बताया है।

८. भाग १ के पृ. ३०१ पर लिखा है कि व्यन्तरो ने भरतेश्वर की आज्ञा पाते ही शासनों के रक्षक शासक देवों को खूब ठोका, जिससे उनके सब दाँत टूट गये।

९. भाग १ में पृ. २८८ पर लिखा है कि जब जयकुमार ने आवर्तक राजा को भरतेश्वर के सामने पेश किया तो सम्राट ने अपने पादत्राण को सँभालनेवाले चपरासी से कहा कि तुम इसे लात मारो और चपरासी ने बाँये पैर से लात मारी।

१०. भरत और बाहुबलि के मध्य में जो दृष्टियुद्ध जलयुद्ध और मल्लयुद्ध हुए थे, उसका इसमें वर्णन ही नहीं है। पृ. ४१४ पर कहा है कि भरतेश ने बाहुबलि से कहा- "भाई! अब अपने मुख से मैंने कहा कि मैं हार गया और तुम जीत गये इस प्रकार भरतेश्वर ने अपनी हार बताई।"

यह प्रकरण आदिपुराण से बिल्कुल मेल नहीं खाता। आदिपुराण पर्व ३६ में लिखा है कि भरत और बाहुबली के बीच दृष्टियुद्ध, जलयुद्ध और मल्लयुद्ध हुए और तीनों में बाहुबली ने विजय प्राप्त की। रत्नाकर कवि ने पूरा 'भरतेश्वैभव' अपनी इच्छानुसार लिखा है, अतः अप्रामाणिक है।

११. भाग १ के पृ. ४१५ पर लिखा है कि भरतेश्वर ने चक्ररत्न को बुलाकर कहा कि चक्ररत्न जाओ। तुम्हारी मुझे जरूरत नहीं, तुम्हारा अधिपति यह बाहुबली है। जब चक्ररत्न आगे नहीं गया, तब भरतेश्वर क्रोध से कहने लगे अरे चक्रपिशाच! मैं अपने भाई के पास जाने लिए बोलता हूँ, तो भी नहीं जाता है, इस प्रकार कहते हुए उसे धक्का देकर आगे सरकाया, परन्तु वह आगे नहीं बढ़ा।

इस प्रसंग के सम्बन्ध में आदिपुराण पर्व ३६ (श्लोक ६६) में इस प्रकार कहा है- "स्मरण करते ही वह चक्ररत्न भरत के समीप आया, भरत ने बाहुबली पर चलाया, परन्तु उनके अवध्य होने से वह उनकी प्रदक्षिणा



देकर तेजरहित हो उन्हीं के पास जा ठहरा। अतः रत्नाकर कवि का प्रसंग बिल्कुल आगम विरुद्ध है।”

१२. भाग १ के पृ. १४१ पर लिखा है कि भरतेश्वर की ९६ हजार रानियाँ हैं। परन्तु इसके बाद भी पृ. २६५ पर ३०० कन्याओं से, पृ. २७१ पर ३२० कन्याओं से, पृ. २७२ पर ४०० कन्याओं से तथा पृ. ३३० पर २००० कन्याओं से शादी की चर्चा है।

इससे ध्वनित होता है कि भरतेश्वर की ९६ हजार से भी अधिक रानियाँ थीं जो आगमसम्मत नहीं है।

१३. भाग २, पृ. ४ पर लिखा है कि बाहुबली मुनिराज के मन में शल्य थी कि यह क्षेत्र चक्रवर्ती का है। मैं इस क्षेत्र में अन्न-पान ग्रहण नहीं करूँगा, इस गर्व के कारण से उनको ध्यान की सिद्धि नहीं हो रही थी। जब कि आदिपुराण पर्व ३६ में श्लोक १८६ में स्पष्ट लिखा है कि बाहुबलि के हृदय में यह विचार था कि वह भरतेश्वर मुझसे संक्लेश को प्राप्त हुआ है।

इन दोनों प्रकरणों में इतना अन्तर क्यों है?

१४. भाग २ पृ. ३० पर लिखा है कि जयकुमार और सुलोचना के विवाह के अवसर पर भतेश्वर के पुत्र अर्ककीर्ति और जयकुमार का युद्ध नहीं हुआ। जब कि आदिपुराण पर्व ४४ में अर्ककीर्ति और जयकुमार के बीच घनघोर युद्ध का वर्णन है।

१५. भाग २, पृ. ५३ पर लिखा है कि भरत की माँ यशस्वती के नीहार नहीं होता था। जब कि तीर्थंकर की माता के नीहार नहीं होता है, ऐसा आगम में उल्लेख है, चक्रवर्ती की माँ को नीहार नहीं होता हो, ऐसा उचित नहीं।

१६. दीक्षा के समय भरतेश्वर की माँ को मुनिराजों ने पिच्छी और आत्मसार नामक पुस्तक दिलवाई, ऐसा वर्णन भाग २, पृ. ५३ पर है। जब कि उस अवसर्पिणी के तृतीय काल में ग्रन्थ होने का कोई उल्लेख प्राप्त नहीं होता।

१७. भाग २, पृ. ८३ पर सम्राट भरत द्वारा ७२ जिनमंदिरों का निर्माण एवं उनकी पंचकल्याणक पूजा का उल्लेख है। यह प्रकरण भी आगमसम्मत नहीं है। तृतीय एवं चतुर्थ काल में पंचकल्याणक होने का कोई प्रसंग प्राप्त नहीं होता और न ही ७२ जिनालयों का कोई प्रमाण मिलता है।

१८. भाग २, पृ. १४३ पर अणु और परमाणु की

परिभाषा गलत-दी गई है। सबसे सूक्ष्म पुद्गल को परमाणु कहा है और अनन्त परमाणुओं के मिलने से अणु बनता है ऐसा कहा है। यह परिभाषा आगमविरुद्ध है।

१९. भाग २, पृ. १५४ पर लिखा है कि अविपाक निर्जरा मुनियों के ही होती है, सबको नहीं। यह प्रकरण भी आगमविरुद्ध है, क्योंकि अविपाक निर्जरा तो चारों गतियों के जीवों के होती है।

२०. भाग २, पृ. १५५ पर लिखा है कि “कोई-कोई आत्मा पहले घातिया कर्मों का नाश करते हैं और बाद में अघातिया कर्मों का नाश करते हैं। और कोई घातिया और अघातिया कर्मों को एक साथ नाश कर मुक्ति को जाते हैं।”

२१. भाग २, पृ. १५१ पर प्रकरण दिया है कि कर्म, आत्मा व काल ये तीन पदार्थ अनादि हैं और उनके ही निमित्त से धर्म, अधर्म व आकाश कार्यकारी हुए। इसलिए वे आदि-वस्तु हैं। ऐसा भी कोई कहते हैं। यह प्रकरण भी बिल्कुल आगमविरुद्ध है, ऐसा उल्लेख कहीं नहीं मिलता।

२२. भाग २ पृ. १८१ पर भगवान् आदिनाथ ने १०० पुत्रों से कहा- “अब अधिक उपदेश की जरूरत नहीं है। अब अपने शरीर के अलंकारों का त्याग कीजिए। राजवेष को छोड़कर तापसी वेष धारण कीजिए। बाद में दीक्षा होने के बाद भगवान् आदिनाथ ने ‘आत्मसिद्धिरेवास्तु’ इस प्रकार आशीर्वाद भी दिया।” यह सारा वर्णन आगम-सम्मत नहीं है। तीर्थंकर केवली इस प्रकार आशीर्वाद या दीक्षा नहीं देते हैं।

२३. भाग २ पृ. १७७ पर लिखा है कि जिनेन्द्र भगवान् के सिंहासन के चारों ओर हजारों केवली विराजमान थे। यह प्रकरण भी आगमसम्मत नहीं है।

२४. भाग २ पृ. २१४ पर तीर्थंकर प्रभु के अंतिम संस्कार के समय तीन कुण्डों को तीन शरीर की सूचना देनेवाला बताया है। यह प्रकरण बिल्कुल गलत है।

२५. भाग २ पृ. २१५ पर भगवान् आदिनाथ का माघ बदी चतुर्दशी को निर्वाण होने से शिवरात्रि के प्रचलन का सम्बन्ध जोड़ा गया है। यह प्रकरण आगमसम्मत नहीं है।

२६. भाग २ पृ. २१७ पर अष्टापद की किस प्रकार रचना की गई यह प्रकरण लिखा है, जो किसी भी आगम से मेल नहीं खाता।

२७. भाग २ पृ. २२० पर भरतेश्वर की काली मूँछों का वर्णन है, जब कि आगम के अनुसार ६३ शलाका पुरूषों के दाढ़ी-मूँछ नहीं होते हैं।

२८. भाग २ पृ. २२० पर भरतेश्वर को महान कामी और भोगी बताया है। लिखा है- 'जिन स्त्रियों पर जरा भी बुढ़ापे का असर हुआ, उनको मंदिर में ले जाकर आर्यिकाओं से व्रत दिलाते थे और उनके पास ही छोड़कर नवीन जवान स्त्रियों से विवाह कर लेते थे। ऐसे भोगी राजा को रत्नाकर कवि ने भाग १ पृ. १६९ पर शुद्धोपयोगी कैसे कह दिया, बड़े आश्चर्य की बात है।

२९. भाग २ पृ. २२१ पर लिखा है कि भरतेश्वर की रोज नई-नई शादियाँ होती रहती थीं। लिखा है 'देश-देश से प्रतिदिन कन्याएँ आती रहती हैं। रोज भरतेश्वर का विवाह चल रहा है। इस प्रकार वे नित्य दूल्हा ही बने रहते हैं।

३०. भाग २ पृ. २२० पर लिखा है कि भरतेश्वर अर्ककीर्ति कुमार को बुलाकर बोले- "इधर आओ, इस राज्य को तुम ले लो, मुझे दीक्षा के लिए भेजो।" अर्ककीर्ति के आनाकानी करने पर उन्होंने कहा- मैं घर में रह तो सकता हूँ, परन्तु आयुष्यकर्म तो बिल्कुल समीप आ पहुँचा है। आज ही घातिया कर्मों को नाश करूँगा और कल सूर्योदय होते ही मुक्ति प्राप्त करने का योग है। भरतेश्वर ने पहले दिन दीक्षा ली, शाम को केवलज्ञान हुआ और अगले दिन मोक्ष प्राप्त किया। यह प्रकरण बिल्कुल गलत है। आदिपुराण पर्व ४७ के अनुसार केवलज्ञान प्राप्त होने के बाद भगवान भरत ने समस्त देशों में चिरकाल तक विहार किया। (श्लोक ३९७-३९९)।

३१. इस ग्रन्थ में गुरु हंसनाथ की बहुत चर्चा

है। ऐसा प्रतीत होता है कि रत्नाकर वर्णी के गुरु, हंसनाथ नाम के जैनेतर कवि होंगे।

३२. भाग २ पृ. २३७ पर लिखा है- "ज्ञानावरणी की ४ प्रकृतियों का अंत पहले से हो चुका है, अब बचे हुए धूर्तकर्मों को भी मार गिराऊँगा। तदुपरान्त ध्यान-खड्ग के बल से प्रचला व निद्रा का नाश किया, साथ में अन्तराय व दर्शनावरण की शेष प्रकृतियों को नष्ट किया। यह प्रकरण बिल्कुल आगमविरुद्ध है।

३३. निगोद से निकलकर, मनुष्यपर्याय धारणकर, मोक्ष प्राप्त करनेवाले महाराजा भरत के ९२३ पुत्रों की इसमें कोई चर्चा नहीं है।

उपर्युक्त प्रसंगों के आधार से यह निष्कर्ष निकलता है कि इस ग्रन्थ के रचयिता प्रामाणिक नहीं हैं, उन्होंने राजा आदि को प्रसन्न करने के लिए अपने मन के अनुसार कल्पित कथा गढ़कर लोक में सम्मान प्राप्त करने के लिए इस ग्रन्थ की रचना की थी। इस ग्रन्थ की रचना १६वीं शताब्दी में हुई। उनके सामने भरतेश्वर के चरित्र का निरूपण करनेवाले आचार्यप्रणीत शास्त्र उपलब्ध थे परन्तु उन्होंने उनका आधार न लेकर, लोक को रंजायमान करनेवाला यह अप्रामाणिक ग्रन्थ रच डाला। उनकी जैनधर्म में कोई आस्था नहीं थी और न उनको सैद्धान्तिक ज्ञान ही था। उनका जीवन कामवासना से पूरित रहा। भरतेश्वर को क्षायिक सम्यक्त्व था, अतः उनके सांसारिक भोगों में आसक्ति का अभाव था, परन्तु रत्नाकर कवि ने अपनी प्रवृत्ति एवं वासना के अनुसार भरतेश्वर को महान् भोगी प्रदर्शित किया है। वास्तविकता यह है कि यह ग्रन्थ कथावस्तु तथा सिद्धान्त की अपेक्षा एकदम अप्रामाणिक है।

८१/९४, नीलगिरि मार्ग मानसरोवर,  
जयपुर-३०२०२० (राजस्थान)

### आत्मकल्याणच्छुक आत्मारथी सम्पर्क करें

अनेकान्त-ज्ञान मंदिर शोध-संस्थान बीना के अन्तर्गत निर्माणरत श्रुतधाम परिसर में अनेकान्त प्रज्ञाश्रम भवन बनकर तैयार है। अनेकान्त प्रज्ञाश्रम-समाधि साधना केन्द्र में साधना करने हेतु, श्री दिगम्बर जैनसमाज के वानप्रस्थी व्यक्ति जो अपनी पारिवारिक जिम्मेदारियों से मुक्त हो गए हैं, सेवा निर्वृत्त हो चुके हैं, शेष जीवन धार्मिक वातावरण में व्यतीत करना चाहते हैं। उनके आवास, स्वाध्याय-ज्ञानार्जन, शुद्धभोजन एवं संयमी जनों का सान्निध्य सुलभ रहेगा। केन्द्र पर आने के इच्छुक दम्पति एवं एकल व्यक्ति निम्न पते पर आवेदन भेजें। आगत आवेदनों पर विचार करके आपको चयन समिति प्रवेश दे सकेगी।

ब्र. संदीप सरल, अनेकान्त ज्ञान मंदिर शोध  
संस्थान बीना, (सागर) म.प्र. ०७५८०-२२२७९

## पंचकारणसमवाय आगमोक्त नहीं-१

प्र० ( डॉ० ) रतनचन्द्र जैन

कुछ आधुनिक जैन विद्वानों की मान्यता है कि प्रत्येक कार्य पाँच कारणों के सामूहिक योग से उत्पन्न होता है- स्वभाव, नियति, कर्म पुरुषार्थ और काल। इन पाँच कारणों के समूह को उन्होंने पंचकारणसमवाय नाम दिया है।

किन्तु यह मान्यता आगमसम्मत नहीं है। आगम में कहीं भी पंचकारणसमवाय से प्रत्येक कार्य के उत्पन्न होने का उल्लेख नहीं है। विद्वानों ने अपने मत की स्थापना में जो प्रमाण दिये हैं वे पंचकारणसमवाय के समर्थक नहीं हैं। उन्होंने उन्हें भूल से समर्थक मान लिया है या बलात् समर्थक सिद्ध करने का प्रयत्न किया है। यहाँ उक्त मत के समर्थन में प्रमुख रूप से प्रस्तुत किये जाने वाले पं० बनारसीदासकृत नाटक समयसार के निम्नलिखित दोहे पर विचार किया जा रहा है-

पदसुभाऊ पूरब उदै निहचै उद्यम काल।

पच्छपात मिथ्यातपथ सरवंगी शिवचाल॥

पंचकारणसमवाय के समर्थक विद्वान यहाँ 'पदसुभाऊ' से स्वभावरूप कारण, 'पूरब उदै' से कर्मरूप कारण, 'निहचै' (निश्चय) से नियतिरूप कारण, 'उद्यम' से पौरुषरूप कारण तथा 'काल' से कालरूप कारण अर्थ लेते हैं और दोहे की व्याख्या इस प्रकार करते हैं- "स्वभाव, कर्म, नियति, पौरुष और काल, इनमें से किसी एक से कार्य की सिद्धि मानना मिथ्यात्व है और पाँचों से कार्यसिद्धि स्वीकार करना सम्यक्त्व है।" यह व्याख्या करके वे कहते हैं कि इस दोहे में पंचकारणसमवाय से प्रत्येक कार्य के उत्पन्न होने का प्रतिपादन किया गया है। (जैन तत्त्वमीमांसा/पं० फूलचन्द्र जी शास्त्री/पृ.६५-६७/अशोक प्रकाशन मंदिर भदैनौ वाराणसी/१९६०)।

आश्चर्य यह है कि विद्वानों ने यहाँ 'पदसुभाऊ' आदि पदों को कारणवाचक कैसे मान लिया? वे कारणवाचक तो हैं ही नहीं। वे तो आत्मा के विभिन्न धर्मों के वाचक हैं। दोहे का वास्तविक अर्थ इस प्रकार है-

आत्मा को क्षणिक (पदसुभाऊ=पदार्थ का सूक्ष्म स्वभाव), कर्मरूप (पूरब उदै=पूर्व कर्म का उदय), अभेद (निहचै=निश्चय या परमार्थ स्वरूप), कर्ता (उद्यम) तथा

कालात्मक (काल) इनमें से किसी एक रूप ही मानना मिथ्यात्व है तथा कथंचित् सर्वरूप मानना सम्यक्त्व है।

यह अर्थ उक्त दोहे के बाद कहे गये निम्न पद्यों से प्रमाणित है-

वेदपाठी ब्रह्म माने निहचै स्वरूप गहै,  
मीमांसक कर्म माने उदै में रहतु हैं।

बौद्धमती बुद्ध मानै सूक्ष्म सुभाऊ साथै,  
शिवमती शिवरूप काल को कहतु हैं॥

न्यायग्रन्थ के पढ़ैया थापै करताररूप,  
उद्दिम उदीरि उर आनन्द लहतु हैं।

पाँचों दरसनी तेतो पोषे एक-एक अंग,  
जैनी जिनपंथी सरवंगी नै गहतु हैं॥

+ + + + +  
निहचै अभेद अंग उदै गुण की तरंग,  
उद्यम की रीति लिए उद्धता सकति है।

परजाय रूप को प्रवान सूक्ष्म सुभाऊ,  
काल की सी ढाल परिनाम चक्रगति है।

याही भाँति आतम दरब के अनेक अंग,  
एक माने एक को न माने सो कुमति है।

टेक डारि एक में अनेक खोजे सो सुबुद्धि,  
खोजी जीवे वादी मरे साची कहवती है॥

(नाटक समयसार : सर्वविशुद्धिद्वार ४४,४५)

अर्थात् अद्वैतवेदान्ती आत्मा को ब्रह्म कहते हैं और उसे अभेदात्मक (अद्वैत) निश्चयस्वरूपवाला मानते हैं। मीमांसक पूर्व कर्म के उदय को ध्यान में रखकर आत्मा को कर्मरूप स्वीकार करते हैं। बौद्धमतानुयायी उसे 'बुद्ध' शब्द से पुकारते हैं और क्षणभंगुर सूक्ष्म-स्वभाववाला सिद्ध करते हैं। शैव लोग आत्मा को शिव कहते हैं और उसे कालरूप प्रतिपादित करते हैं। नैयायिक उसे कर्ता के रूप में स्थापित करते हैं और क्रिया का कर्ता कहकर मन में आनंदित होते हैं। इस प्रकार पाँचों दर्शनावलम्बी आत्मा के एक एक अंग को ही स्वीकार करते हैं, किन्तु जिनमतानुयायी जैन इन सभी अंगों को ग्रहण करते हैं अर्थात् इन सभी को आत्मा का धर्म मानते हैं।

उदाहरणार्थ, दर्शन, ज्ञान आदि गुण सत्ता की दृष्टि से आत्मा से भिन्न नहीं हैं, अतः निश्चयदृष्टि से आत्मा अभेदस्वरूप है। पूर्व कर्म के उदय से उसके दर्शन,

ज्ञान, चरित्र, गुण विभावरूप परिणमित होते हैं अतः पूर्व-उदयरूप धर्म भी उसमें है। आत्मा में अनन्त शक्ति होने से वह स्वभाव-विभाव तथा संसार मोक्ष का कर्ता है। इस प्रकार उसमें उद्यम अथवा कर्तृत्व भी विद्यमान है। आत्मा की पर्यायें क्षण-क्षण में बदलती हैं इसलिये वह सूक्ष्म (क्षणिक) स्वभाववाला है। उसके परिणाम काल के समान परिवर्तनशील हैं अतः वह कालरूप भी है। इस भाँति आत्मद्रव्य के अनेक अंग हैं। इनमें से एक को मानना और दूसरे को न मानना कुबुद्धि है और हठ को छोड़कर एक में अनेक का अवलोकन करना सुबुद्धि है। इसलिये लोक में जो यह कहावत है कि 'खोज करने वाला जीता है और विवाद करने वाला भरता है।' वह सत्य है।

यह है उपर्युक्त दोहे का वास्तविक अर्थ। इससे स्पष्ट होता है कि पदसुभाऊ का अर्थ स्वभावरूप कारण

नहीं है, अपितु आत्मा का सूक्ष्म या अनित्य स्वभाव है। पूरब उदै का तात्पर्य कर्मरूप कारण नहीं है, बल्कि आत्मा का कर्मोदयजनित विभावरूप धर्म है। निहचै नियति का वाचक नहीं है, वरन् आत्मा के अभेदरूप निश्चयस्वभाव का वाचक है। उद्यम पौरुष का पर्यायवाची नहीं है, अपितु कर्तृत्वधर्म का द्योतक है और काल शब्द कालरूप कारण के लिए प्रयुक्त न होकर आत्म-परिणामों की परिवर्तनशीलता के लिए प्रयुक्त हुआ है।

पंडित बनारसीदास जी द्वारा इतना स्पष्ट विवेचन किये जाने पर भी विद्वानों ने पदसुभाऊ आदि पदों को कारणवाचक कैसे मान लिया यह आश्चर्य की बात है। स्पष्ट है कि पंडित जी का उक्त दोहा पंचकारणसमवाय का समर्थक नहीं है। (अपूर्ण)

ए / २, शाहपुरा, भोपाल-४६२ ०३९

## पापी का अन्न

महाभारत-युद्ध में कौरव-सेनापति भीष्म पितामह जब अर्जुन के बाणों से घायल होकर रण-भूमि में गिर पड़े तो कुरुक्षेत्र में हाहाकार मच गया। कौरव-पाण्डव पारस्परिक वैर-भाव भूलकर गाय की तरह डकराते हुए उनके समीप आये। भीष्मपितामह की मृत्यु यद्यपि पाण्डवपक्ष की विजय-सूचक थी, फिर भी थे तो वे पितामह न? धर्मराज युधिष्ठिर बालकों की भाँति फुप्पा मारकर रोने लगे। अन्तमें धैर्यपूर्वक रूँधे हुए कण्ठ से बोले-

“पितामह! हम ईर्ष्यालु, दुर्बुद्धि पुत्रों को, इस अन्त समय में, जीवन में उतारा हुआ कुछ ऐसा उपदेश देते जाइये, जिससे हम मनुष्यजीवन की सार्थकता प्राप्त कर सकें।”

धर्मराज का वाक्य पूरा होने पर अभी पितामह के ओठ पूरी तरह हिल भी न पाये थे कि द्रौपदी के मुख पर एक हास्य रेखा देख सभी विचलित हो उठे। कौरवों ने रोषभरे नेत्रों से द्रौपदी को देखा। पाण्डवों ने इस अपमान और ग्लानिको अनुभव करते हुए सोचा-

“हमारे सरपै उल्कापात हुआ है और द्रौपदी को हास्य सूझा है।”

पितामह को कौरव-पाण्डवों की मनोव्यथा और द्रौपदी के हास्य को भाँपने में विलम्ब न लगा। वे मधुर स्वर में बोले-

“बेटी द्रौपदी! तेरे हास्य का मर्म मैं जानता हूँ। तूने सोचा-जब भरे दरबार में दुर्योधन ने साड़ी खींची, तब उपदेश देते न बना, वनों में पशु-तुल्य जीवन व्यतीत करने को मजबूर किया गया, तब सान्त्वना का एक शब्द भी मुँह से न निकला, कीचक-द्वारा लात मारे जाने के समाचार भी साम्यभाव से सुन लिये, रहने योग्य स्थान और क्षुधा-निवृत्ति को भोजन माँगने पर जब कौरवों ने हमें दुतकार दिया, तब उपदेश याद न आया। सत्य और अधिकार की रक्षा के लिए पाण्डव युद्ध करने को विवश हुए तो सहयोग देना तो दूर, उल्टा कौरवों के सेनापति बनकर हमारे रक्त के प्यासे हो उठे, और जब पाण्डवों द्वारा मार खाकर जमीन सूँघ रहे हैं, मृत्यु की घड़ियाँ गिन रहे हैं, तब हमीं को उपदेश देने की लालसा बलवती हो रही है, बेटी! तेरा यह सोचना सत्य है। तू मुझपर जितना हँसे कम है। परन्तु पुत्री! उस समय मुझ में उपदेश देने की क्षमता नहीं थी, पापात्मा कौरवों का अन्न खाकर मेरी आत्मा मलीन हो गई थी, दूषित रक्त नाड़ियों में बहने से बुद्धि भ्रष्ट हो गई थी, किन्तु वह सब अपवित्र रक्त अर्जुन के वाणों ने निकाल दिया है। अतः आज मुझे सन्मार्ग बताने का साहस हो सकता है।”

‘गहरे पानी पैठ’ से साभार

## तत्त्वार्थसूत्र में प्रयुक्त 'च' शब्द का विश्लेषणात्मक विवेचन

पं० महेशकुमार जैन, व्याख्याता

सप्तम अध्याय

मैत्री-प्रमोद-कारुण्य-माध्यस्थ्यानि च सत्व-  
गुणाधिक-क्लिश्यमानाविनेयेषु ॥ १ ॥

सर्वार्थसिद्धि, राजवार्तिक, श्लोकवार्तिक व  
सुखबोधतत्त्वार्थवृत्ति में 'च' शब्द की व्याख्या नहीं की  
है।

तत्त्वार्थवृत्ति-चकारः परस्परसमुच्चये वर्तते,  
पूर्वोक्तसूत्रार्थेषु अत्र च।

अर्थ- चकार परस्पर समुच्चय के लिए है, जिससे  
पूर्व में कहे गये सूत्रों का अर्थ यहाँ भी है।

भावार्थ- हिंसादि पाँचों पाप इहलोक एवं परलोक  
दोनों में अपाय एवं अवघ्न का दर्शन कराने वाले हैं  
एवं दुःख रूप ही हैं। ऐसी भावना करनी चाहिये। उसी  
प्रकार जीवों पर मैत्री भाव, गुणी जनों के प्रति प्रमोद  
भाव, दुःखी जीवों पर करुणाभाव और अविनयी जीवों  
के प्रति माध्यस्थ्य भाव होना चाहिए। इनसे भी पाँचों  
व्रत पूर्णता को प्राप्त होते हैं।

अगार्यनगारश्च ॥ १९ ॥

सर्वार्थसिद्धि, राजवार्तिक, श्लोकवार्तिक व  
सुखबोधतत्त्वार्थवृत्ति में 'च' शब्द की व्याख्या नहीं की  
है।

तत्त्वार्थवृत्ति- अगारी च अनगारश्च द्विप्रकारो  
व्रती भवति। चकारः परस्परसमुच्चयार्थः।

अर्थ- अगारी (गृहसहित) और अनगार (गृह-  
रहित) व्रती दो प्रकार के होते हैं। सूत्र में चकार शब्द  
परस्पर समुच्चय के लिए है।

भावार्थ- व्रती के २ भेद होते हैं- १. अगारी  
(घरसहित), २. अनगारी (घररहित)।

दिग्देशानर्थदण्डविरति-सामायिक-प्रोषधोपवा-

सोपभोगपरिभोगपरिमाणातिथिसंविभागव्रत-सम्पन्नश्च ॥  
२१ ॥

सर्वार्थसिद्धि, राजवार्तिक व सुखबोधतत्त्वार्थ-  
वृत्ति- 'च' शब्दो वक्ष्यमाणगृहस्थधर्मसमुच्चयार्थः।

अर्थ- सूत्र में जो 'च' शब्द है वह आगे कहे  
जानेवाले गृहस्थधर्म के संग्रह करने के लिए दिया है।

श्लोकवार्तिक- 'च' शब्दः सूत्रेऽनुक्तसमुच्चयार्थः  
प्रागुक्तसमुच्चयार्थात्। तेन गृहस्थस्य पंचाणुव्रतानि  
सप्तशीलानि गुणव्रतशिक्षाव्रतभांजीति द्वादशदीक्षाभेदाः  
सम्यक्त्वपूर्वकाः सल्लेखनान्ताश्च महाव्रततच्छीलवत्।

अर्थ- सूत्र में 'च' शब्द अनुक्त के समुच्चय के  
लिए है एवं पूर्व में कहे गये व्रतादि का समुच्चय होने  
से उनका भी ग्रहण होता है, जिससे गृहस्थ के पाँच  
अणुव्रत और सात शीलरूप गुणव्रत और शिक्षाव्रत हो  
जाते हैं। इस प्रकार सम्यक्त्वपूर्वक सल्लेखनान्तर्वर्ती ये  
मध्यवर्ती बारह दीक्षा के भेद गृहस्थ के हैं, जैसे कि  
महाव्रत और उसके परिरक्षक शील होते हैं।

तत्त्वार्थवृत्ति- चकारोऽनुक्तसमुच्चयार्थः। तेन  
वक्ष्यमाणसल्लेखनादियुक्तः अगारीति कथ्यते।

अर्थ- सूत्र में च शब्द अनुक्त के समुच्चय के  
लिए है, जिससे आगे कही जानेवाली सल्लेखना आदि  
से युक्त गृहस्थ होता है, यह कहा गया है।

भावार्थ सूत्र में 'च' शब्द से श्रावकों के १२ व्रत  
होते हैं एवं वह अन्त समय में सल्लेखना को ग्रहण  
करता है, इन सबका समुच्चय हो जाता है।

श्री दि. जैन श्रमण संस्कृति संस्थान  
सांगानेर, जयपुर (राज०)

### भतृहरि-नीतिशतक

लाङ्गूलचालनमधश्चरणावतापं, भूमौ निपत्यवदनोदरदर्शनञ्च।

श्वा पिण्डदस्य कुरुते गजपुङ्गवस्तु, धीरं विलोकयति चाटुशतैश्च भुङ्क्ते ॥

कुत्ता खाना खिलानेवाले के आगे पूँछ हिलाकर, पैरों पर गिरकर, भूमि पर लोटकर तथा पेट दिखाकर  
चापलूसी करता है, किन्तु हाथी भोजन करानेवाले को निःस्पृहता से देखता रहता है और बहुत मनाने पर  
ही खाता है।

## स्वयं जानें, पहचानें.... एवं त्यागें मांसाहार!

शाकाहारी-पदार्थ-दर्शक हरे निशान की विश्वसनीयता संदेह के घेरे में आने के पश्चात् केन्द्रीय सूचना अधिकार कानून के तहत वस्तु स्थिति तक पहुँचने का प्रयास निरंतर जारी है। दरअसल, कानून की व्याख्याएँ, नीयत एवं क्रियान्वयन सब कुछ भ्रमित एवं व्यथित करनेवाली ही है। भ्रष्ट व्यवस्था का बोलबाला, कर्मठ शासकों का अभाव तथा जनमानस की 'चलता है' प्रवृत्ति इन कारणों से गति चाहे धीमी हो, किन्तु हमें विश्वास है कि मांसाहार का पिछले द्वार से शाकाहारियों/जैनियों के घर में प्रवेश अवश्य रुकेगा।

Additives अर्थात् अंतर घटक पदार्थ चाहे शाकाहारी घटकों से बना हो, उसे अपेक्षित स्वाद, स्वरूप, गुणधर्म, टिकाऊपन आदि प्रदान करने के लिए जो सैंकड़ों प्रकार के Additives हैं उनमें, अनेकों का स्रोत मांसाहारी है। यूरोपियन कानूनों के तहत अंतरघटकों की पहचान हेतु नम्बर प्रदान किये गये हैं जिसे ई (E) के आगे लिखा जाता है। इस पद्धति को E-Numbering System (ENS) कहा जाता है।

E-Number को निम्न प्रकार से वर्गीकृत किया गया है-

- 100 Colouring Agents
- 200 Conservation Agents
- 300 Anti-oxidants
- 400 Emulsifiers, Stabilizers and Thickeners
- 500 Anti-Coagulants
- 600 Taste Enhancers
- 900 Coatings
- 1400 Modified starches

यूरोपियन कानून के बाद 'ग्लोबलायजेशन' के चलते भारत में भी ENS प्रणाली लागू की गई, जो शाकाहारप्रेमियों के लिए लाभदायक साबित हो रही है। ऐसे अनेक Additives हैं, जिनका स्रोत प्राणीजन्य एवं वनस्पतिजन्य दोनों का हो सकता है। कुछ Additives ऐसे भी हैं, जो सिर्फ प्राणीजन्य हैं। रासायनिक तथा वनस्पति पर प्रक्रिया करके Additives प्राप्त करना अधिक कठिन एवं खर्चीला होता है, जब कि अंडा, मांस, प्राणियों के शव/अवयवों से उसी Additives की प्राप्ति सहज और सस्ती होती है। कम लागत और अधिक मुनाफे के चक्कर

में अधिकतर उत्पादक प्राणीजन्य स्रोत का विकल्प चुन लेते हैं, जो प्रचुर मात्रा में प्राप्त करना उनके लिए कठिन नहीं होता। उत्पादन प्रक्रिया के दौरान बहुत सारी रासायनिक प्रक्रियाओं से गुजरे होने के कारण उत्पादकों की प्रयोगशाला जाँच में Additives का नाम तो खोजा जा सकता है, किन्तु उसका स्रोत खोज पाना अधिकतर Food Laboratory की क्षमता के बाहर है। यहाँ पर गंभीर विसंगति यह है कि उन्हीं प्रयोगशालाओं के दम पर समस्त राज्य सरकारें इन उत्पादकों पर कानून के प्रावधानों के उल्लंघन की कारवाई करती हैं। भ्रष्ट व्यवस्था की मिलीभगत से लालची उत्पादक धड़ल्ले से मांसाहारी अंतरघटकों का प्रयोग कर शाकाहारी ग्राहकों को लुभाने के लिए हरा निशान लगाकर करोड़ों भोले लोगों की भावनाओं से खिलवाड़ करते हैं। बेबस कानून में यह ताकत नहीं कि वह उन्हें रोक सके। संदेह होता है कि संभवतः यही कारण है कि सरकार भी जानबूझकर प्रयोगशालाओं को परिपूर्ण नहीं बना रही हो।

सूचना अधिकार के तहत नये सिरे से केन्द्रीय स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय तथा हैदराबाद व मैसूर की प्रयोगशालाओं से विस्तृत खोजबीन से युक्त आधार देकर जानकारी माँगी गई है। यह सारी प्रक्रिया बहुत समय लेनेवाली है। अतः जब तक हम हमारे लक्ष्य तक न पहुँचे, तब तक शाकाहार प्रेमियों की सुविधा के लिए E-numbers दे रहे हैं। उत्पादों पर अत्यन्त छोटे अक्षरों से लिखा जाँच पड़ताल कर ही प्रयोग रोकने का उपभोक्ता स्वयं निर्णय करें।

### Animal Derived (प्राणीजन्य स्रोत)

E-120

E-422, E-471, E-485, E-488

E-542

E-631

E-904, E-910, E-920, E-921

### Possibly Animal Derived

E-252, E-270

E-322, E-325, E-326, E-327

E-430, E-431, E-432, E-433, E-434, E-435,

E-436, E-470a, E-470b, E-472, E-472a, E-472b, E-472c, E-472d, E-472e, E-472f, E-473, E-474, E-475, E-476, E-477, E-478, E-479a, E-480, E-481,



E-482, E-483, E-491, E-492, E-493, E-494, E-495,  
E-570, E-572, E-585  
E-626, E-627, E-628, E-629, E-630, E-632,  
E-633, E-634, E-635, E-640.

जिन हरे निशानवाले पॅकेज खाद्य उत्पादों पर उपर्युक्त में से कोई भी E-number है, तो उसे फिलहाल मांसाहारी श्रेणी में रख कर तत्काल प्रयोग रोकने का अनुरोध है। इन सभी क्रमांकों के संबंधित अंतरघटक के नाम एवं समस्त संभावित स्रोतों की जानकारी भी उपलब्ध है। इसके अलावा निम्न E-numbers ऐसे हैं जो प्राणीजन्य तो नहीं किन्तु, बच्चों के स्वास्थ्य के लिए विशेष हानिकारक हैं। स्वास्थ्य की दृष्टि से त्याग करना बेहतर है।

#### Specifically harmful to children

#### विशेष रूप से बच्चों के लिए हानिकारक

E-102, E-104, E-107, E-110, E-120, E-122,  
E-123, E-124, E-128, E-131, E-132, E-133, E-151,  
E-154, E-155, E-160b, E-162

E-210, E-211, E-212, E-213, E-214, E-215,  
E-216, E-217, E-218, E-219, E-250, E-251, E-296

अंत में निवेदन यही कि अपना जैनत्व सुरक्षित रखने हेतु इस अभियान में सक्रियता से सहभागी बनें।

मांसाहारी पदार्थ किसी भी रूप में हमारे घर में प्रवेश न कर पाये, इस संकल्प के साथ इस अभियान को बल प्रदान करें।

किसी प्रकार के संदेह के निवारण हेतु सम्पर्क करें। समस्त जानकारी / पत्राचार अवलोकन हेतु सदा उपलब्ध है।

स्थानक / मंदिर आदि सार्वजनिक स्थानों पर इस जानकारी की प्रतियाँ लगाकर, अखबार / पत्रिकाओं में प्रकाशित कर घर-घर तक, घर के प्रत्येक सदस्य तक अभियान का संदेश पहुँचाने का विनम्र अनुरोध है। मंगल कामनाएँ।

सुशील कुमार टाटिया 'शाकाहार अभियान'

शांतिसदन, मेनरोड़, चोपड़ा

(०२५८६), २२०४८८, २२००६५

नोट- E-numbers के बारे में अधिक जानकारी के लिए kuruvinda.com पर सम्पर्क करें।

('सम्यग्दर्शन' (मासिक), संपादक-नेमीचंद बांठिया, प्रकाशक श्री अ.भा. सुधर्म जैन संस्कृतिरक्षक संघ, जोधपुर-३४२०२ (राज.) सम्यग्दर्शन कार्यालय नेहरू गेट ब्यावर (राज.)- ०१४६२-२५१२१६, २५७६९९ से साभार)

### अभिमान की सीमा

एक प्रसिद्ध मूर्तिकार अपने पुत्र को मूर्ति बनाने की कला सिखाने लगा। उसका पुत्र शीघ्र ही मेहनत और लगनपूर्वक बेहद खूबसूरत मूर्तियाँ बनाने लगा। उसकी मूर्तियाँ इतनी आकर्षक होतीं कि जो भी देखता दाँतों तले उँगली दबा लेता। लेकिन युवक का पिता उसकी बनाई मूर्तियों में कोई न कोई कमी निकाल ही देता। उसने अपने पिता से अपनी मूर्तियों की प्रशंसा सुनने के लिए और कड़ा अभ्यास करना शुरू कर दिया। शीघ्र ही उसकी कला में और निखार आ गया, किंतु फिर भी पिता के मुख से उसकी प्रशंसा के लिए एक भी शब्द न निकला। एक दिन उसने एक अत्यंत आकर्षक मूर्ति बनाकर अपने मित्र के द्वारा पिता के पास भिजवाई और स्वयं ओट में छिप गया। पिता उस मूर्ति को देखकर उस मूर्तिकार की भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगा और उसे एक महान कलाकार भी घोषित किया। पिता के मुख से मूर्तिकार की प्रशंसा सुन पुत्र बाहर निकलकर आया और गर्व से बोला "पिताजी, वह मूर्तिकार मैं ही हूँ। यह मूर्ति मैंने ही बनाई है। अब आप इसमें कोई कमी निकालिए। आखिर आज आपको मानना ही पड़ा कि मैं एक महान कलाकार हूँ।" पुत्र की बात पर पिता बोला, "बेटा, एक बात हमेशा याद रखना कि अभिमान व्यक्ति की प्रगति के सारे दरवाजे बंद कर देता है। आज तक मैंने तुम्हारी प्रशंसा नहीं की, इसलिए तुम अपनी कला में निखार लाते रहे। अगर आज तुमने यह नाटक अपनी प्रशंसा सुनने के लिए रचा है तो इससे तुम्हारी ही प्रगति में बाधा होगी।" पुत्र को अपनी गलती की अहसास हुआ और पिता से क्षमा माँग वह अपनी कला को और निखारने में लग गया।

'दृष्टांत महासागर' से साभार

## जिज्ञासा-समाधान

पं० रतनलाल बैनाड़ा

**प्रश्नकर्ता-** पं० आलोक शास्त्री जैन दर्शनाचार्य, ललितपुर।

**जिज्ञासा-** 'धर्ममंगल' के २ अक्टूबर २००९ के अंक में वीरसागर जी की डायरी से सिद्ध किया गया है कि आचार्य जयसेन भी, श्रावकों को शुद्धोपयोग है, ऐसा कहते हैं। क्या आप इससे सहमत हैं?

**समाधान-** किसी भी जिनवाणी से संबंधित प्रश्न के उत्तर में किसी व्यक्तिविशेष की अथवा मेरी सहमति कुछ भी महत्त्व नहीं रखती है। जिनवाणी से संबंधित प्रश्नों के उत्तर आगम से निर्णय करना ही उचित होता है। आपकी जिज्ञासा का समाधान आचार्य जयसेन के अनुसार इस प्रकार है-

१. प्रवचनसागर गाथा-९ की टीका में आचार्य जयसेन, शुद्धोपयोग के गुणस्थान के संबंध में इस प्रकार लिखते हैं- मिथ्यात्वसासादनमिश्रगुणस्थानत्रये तारतम्येना-शुभोपयोगः, तदनन्तरमसंयतसम्यग्दृष्टिदेशविरतप्रमत्तसंयत-गुणस्थानत्रये तारतम्येन शुभोपयोगः, तदनन्तरमप्रमत्तादिक्षीणक-षायांतगुणस्थानघटके तारतम्येन शुद्धोपयोगः, तदनन्तरं सयोग्ययोगिजिनगुणस्थानद्वये शुद्धोपयोगफलमिति भावार्थः।

**अर्थ-** मिथ्यात्व, सासादन और मिश्र इन तीन गुणस्थानों में तारतम्य से घटता हुआ अशुभोपयोग है। इसके बाद असंयतसम्यग्दृष्टि, देशविरत तथा प्रमत्तसंयम ऐसे तीन गुणस्थानों में बढ़ता हुआ शुभोपयोग है। उसके बाद अप्रमत्त से लेकर क्षीणकषाय तक छह गुणस्थानों में बढ़ता हुआ शुद्धोपयोग है। उसके बाद सयोगकेवली एवं अयोग-केवली इन दो गुणस्थानों में शुद्धोपयोग का फल है, ऐसा भाव है।

**भावार्थ-** उपर्युक्त टीका के अनुसार श्रावक अर्थात् पंचमगुणस्थानवर्ती देशसंयत के शुभोपयोग कहा है।

२. प्रवचनसार गाथा १८१ की टीका में आचार्य जयसेन महाराज लिखते हैं- मिथ्यादृष्टिसासादनमिश्र-गुणस्थानत्रये तारतम्येनाशुभपरिणामो भवतीति पूर्व भणित-मस्ति, अविरतदेशविरतप्रमत्तसंयतसंज्ञगुणस्थानत्रये तारतम्येन शुभपरिणामश्च भणितः, अप्रमत्तादिक्षीणकषायांतगुणस्थानेषु तारतम्येन शुद्धोपयोगोऽपि भणितः।

**अर्थ-** मिथ्यादृष्टि सासादन और मिश्र इन तीन गुणस्थानों में घटता हुआ अशुभ परिणाम होता है, ऐसा पहले कहा जा चुका है। अविरतसम्यक्त्व, देशविरत तथा

प्रमत्तसंयत इन तीन गुणस्थानों में तारतम्य से शुभपरिणाम कहा गया है तथा अप्रमत्त गुणस्थान से क्षीणकषाय गुणस्थान तक तारतम्य से शुद्धोपयोग कहा गया है।

**भावार्थ-** इस टीका में भी आचार्य जयसेन ने पंचम गुणस्थानवर्ती श्रावक के शुभोपयोग ही कहा है।

३. प्रवचनसार गाथा २६० की टीका में आचार्य जयसेन ने इसप्रकार कहा है-

निर्विकल्पसमाधिबलेन शुभाशुभोपयोगद्वयरहितकाले कदाचिद्वीतरागचारित्रलक्षणशुद्धोपयोगयुक्ताः कदाचित्पुनर्मा-हद्वेषाशुभरागरहितकाले सरागचारित्रलक्षणशुभोपयोगयुक्ताः सन्तो भव्यलोकं निस्तारयन्ति।

**अर्थ-** जो मुनि निर्विकल्प समाधि के बल से जब शुभ और अशुभ दोनों उपयोगों से रहित हो जाते हैं, तब वीतरागचारित्ररूप शुद्धोपयोग के धारी होते हैं। कदाचित् मोह द्वेष व अशुभ राग से शून्य रहकर सरागचारित्रमय शुभोपयोग में वर्तन करते हुए भव्य लोगों को तारते हैं।

**भावार्थ-** उपर्युक्त टीका में आचार्य जयसेन महाराज ने शुद्धोपयोग का लक्षण वीतरागचारित्ररूप किया है, जिसका तात्पर्य स्पष्ट है कि वीतरागचारित्र से रहित होते हुए गृहस्थों के शुद्धोपयोग नहीं होता।

उपर्युक्त तीनों प्रमाणों से यह स्पष्ट है कि प्रवचनसार ग्रन्थ में आचार्य जयसेन महाराज की टीका के अनुसार पंचम गुणस्थानवर्ती श्रावकों के शुभोपयोग ही होता है, शुद्धोपयोग होता ही नहीं है।

अब हम यह दिखाना चाहेंगे कि वीरसागर जी की डायरी में जो प्रसंग दिया गया है, उसे कितना तोड़ा-मरोड़ा गया है! साधर्मि भाइयों से अनुरोध है कि इस प्रसंग को मन लगाकर पढ़ें, ताकि उनको यह विदित हो जाये कि गृहस्थों के चतुर्थ या पंचम गुणस्थान में शुद्धोपयोग की सिद्धि के लिए आचार्यों की टीकाओं को बदलकर तथा अपने आशय के अनुरूप बनाकर किस तरह साधर्मि भाइयों को बहकाया जा रहा है। 'धर्ममंगल' में लिखा है- परिहारमाह-युक्तमुक्तं भवता, परं किन्तु ये प्रचुरेण-शुभोप-योगेन (पत्रिका में इस स्थान पर उभोपयोगेन लिखा है। परन्तु श्री लीलावती जी ने फोन पर बताया कि यह छपाई की भूल है। यहाँ शुभोपयोगेन होना चाहिए।) वर्तन्ते ते यद्यपि क्वापि काले शुद्धोपयोगभावनां कुर्वन्ति तथापि शुद्धोपयोगिन एव भण्यन्ते।

उपर्युक्त कथन गलत है। आ. जयसेन की सही टीका इसप्रकार है- “युक्तमुक्तं भवता, परं किन्तु ये प्रचुरेण शुभोपयोगेन वर्तन्ते, ते यद्यपि क्वापि काले शुद्धोपयोगभावनां कुर्वन्ति तथापि शुभोपयोगिन एव भण्यन्ते।

विज्ञ पाठक स्वयं देखें कि उपर्युक्त टीका को किस प्रकार डायरी में अपने गलत अभिप्राय के अनुसार लिखा गया है। टीका का सही अर्थ यह है- “आपने जो कहा वह ठीक है, परन्तु जो अधिकतर शुभोपयोग में वर्तन करते हैं, वे यद्यपि किसी काल में शुद्धोपयोग की भावना करते हैं, तो भी शुभोपयोगी ही कहे जाते हैं। इसका तात्पर्य यह है कि सामायिक आदि काल में श्रावकों के शुद्धोपयोग की भावना होने पर भी वे शुभोपयोगी ही कहे जाते हैं। अर्थात् श्रावकों को सामायिक आदि काल में भी शुभोपयोगी ही कहा जाता है। इससे स्पष्ट है कि वीरसागर जी की डायरी का यह प्रसंग भी गृहस्थों के शुभोपयोग ही सिद्ध कर रहा है।

बड़े आश्चर्य की बात है कि वीरसागर जी की डायरी में उपर्युक्त प्रसंग में ‘शुभोपयोगिन एव भण्यन्ते’ के स्थान पर ‘शुद्धोपयोगिन एव भण्यन्ते’ ऐसा लिखा हुआ क्यों पाया गया? यदि आँसू पोंछते हुए यह कह दिया जाये कि यह प्रेस की गलती है, तो फिर श्रावकों के शुद्धोपयोग कैसे सिद्ध कर कर पायेंगे? अर्थात् आचार्य जयसेन के किसी भी कथन से यह सिद्ध नहीं होता कि श्रावकों के शुद्धोपयोग होता है।

कतिपय साधर्मि भाइयों की यह मान्यता बन चुकी है कि चौथें और पाँचवें गुणस्थान में शुद्धोपयोग होता है जब कि द्रव्यानुयोग के किसी भी ग्रन्थ में ऐसा उल्लेख नहीं मिलता। द्रव्यानुयोग के समस्त ग्रन्थों का आलोडन करने पर यह निष्कर्ष निकलता है कि गुणस्थानों में उपयोग का उल्लेख सिर्फ आचार्य जयसेन महाराज तथा ब्रह्मदेवसूरि के अलावा किसी ने नहीं किया है और इन दोनों के उल्लेख के अनुसार तीसरे गुणस्थान तक अशुभोपयोग, बाद में छठे गुणस्थान तक शुभोपयोग और आगे सातवें से बारहवें गुणस्थान तक शुद्धोपयोग कहा गया है। जब इतना स्पष्ट कथन उपलब्ध है तब फिर इधर-उधर से खेंचतान कर चौथे-पाँचवें गुणस्थान में शुद्धोपयोग की सिद्धि करने का प्रयास व्यर्थ में ही क्यों किया जाता है। ऐसे भाइयों से निवेदन है कि आगम के अनुसार अपनी बुद्धि बनायें और इस तरह तोड़-मरोड़कर अपना अभिप्राय सिद्ध करने की

आदत छोड़ें।

**जिज्ञासा-** वेदक-प्रायोग्यकाल किसे कहते हैं?

**समाधान-** जिस काल में वेदकसम्यक्त्व अर्थात् क्षायोपशमिक सम्यक्त्व होने की योग्यता होती है उस काल को वेदक-प्रायोग्यकाल कहते हैं। इसके लिए गोम्मटसार कर्मकाण्ड में इसप्रकार कहा है-

**उदधिपुधत्तं तु तसे पल्लासंखूणमेगमेयक्खे।  
जाव य सम्मं मिस्सं वेदगजोग्गो य उवसमस्स तदो॥**

**अर्थ-** सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृति की स्थिति घटकर त्रस जीव के तो जब पृथक्त्वसागर प्रमाण शेष रहे तथा एकेन्द्रिय के पल्य के असंख्यातवें भाग कम एक सागर प्रमाण शेष रहने तक ‘वेदक योग्यकाल’ है और सत्तारूप स्थिति उससे भी कम हो जावे तो वह उपशम काल होता है ॥ ६१५ ॥

**भावार्थ-** कोई उपशम सम्यग्दृष्टि या क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टि जीव जब मिथ्यात्व गुणस्थान में आ जाता है, तब उसकी सत्ता में जो मिथ्यात्व और सम्यक् मिथ्यात्व प्रकृति है उसकी उद्वेलना प्रारम्भ हो जाती है, अर्थात् सम्यक् प्रकृति सम्यक्-मिथ्यात्व रूप होने लगती है और सम्यक् मिथ्यात्व प्रकृति मिथ्यात्वरूप होने लगती है। इन दोनों प्रकृतियों की स्थिति घटने लगती है। जब तक त्रस जीव के इन दोनों प्रकृतियों की स्थिति घटकर पृथक्त्व सागर न रह जाये तथा एकेन्द्रिय के पल्य के असंख्यातवें भाग कम एक सागर न रह जाये, तब तक उस जीव के वेदक-प्रायोग्यकाल है अर्थात् तब तक उस जीव के यदि होगा तो क्षायोपशमिक सम्यक्त्व ही होगा, उपशम सम्यक्त्व हो ही नहीं सकता। तथा इन दोनों प्रकृतियों की स्थिति पृथक्त्वसागर तथा पल्य के असंख्यातवें भाग से कम एक सागर रह जाती है, उसके बाद यद्यपि दोनों प्रकृतियों की सत्ता है, फिर भी क्षायोपशमिक सम्यक्त्व नहीं हो सकेगा, यदि होगा तो उपशम सम्यक्त्व ही होगा। श्री धवला पु०१ पृष्ठ-३३ में भी इसी प्रकार कहा गया है।

सम्यक् मिथ्यात्व एवं सम्यक्प्रकृति की उद्वेलना होकर उनकी स्थिति को पृथक्त्व सागर अथवा पल्य के असंख्यातवें भाग से कम एक सागर प्रमाण होने में पल्य का असंख्यातवाँ भाग काल लगता है। अतः उपशम सम्यक्त्व का जघन्य अन्तर पल्य का असंख्यातवाँ भाग कहा गया है।

**जिज्ञासा-** क्या पुलाक आदि पाँचों मुनि भावलिंगी

होते हैं, ऐसा कोई आगम प्रमाण है?

**समाधान-** श्री राजवार्तिक / अध्याय ९ / ४६ के वार्तिक नं० ९ में इस प्रकार कहा है- सम्यग्दर्शनं निर्ग्रन्थरूपं च भूषावेशायुधविरहितं तत्सामान्ययोगात् सर्वेषु हि पुलाकादिषु निर्ग्रन्थशब्दो युक्तः।

**अर्थ-** भूषा, वेश और आयुध से रहित निर्ग्रन्थ रूप और शुद्ध सम्यग्दर्शन के कारण पुलाक आदि सभी मुनियों में निर्ग्रन्थता समान है अर्थात् सभी सम्यग्दृष्टि हैं और भूषा, वेश, आयुध से रहित हैं अतः इन सबके लिए निर्ग्रन्थ शब्द का प्रयोग उचित है।

राजवार्तिक ९ / ४६ के ११वें वार्तिक में इस प्रकार कहा गया है- यदि रूपं प्रमाणमन्यस्मिन्नपि सरूपे निर्ग्रन्थ व्यपदेशः प्राप्नोतीति, तन्न, कि कारणम्? दृष्ट्यभावात्। दृष्ट्या सह यत्र रूपं तत्र निर्ग्रन्थव्यपदेशः न रूपमात्र इति।

**अर्थ-** प्रश्न यदि भग्नव्रत में निर्ग्रन्थ शब्द का प्रयोग होता है, वस्त्रादि नहीं होने से, तब तो किसी भी नग्न मियादृष्टि में भी निर्ग्रन्थ शब्द का प्रयोग करना चाहिए? उत्तर- जिस किसी नग्न में निर्ग्रन्थ शब्द का प्रयोग नहीं किया जा सकता, क्योंकि उनमें सम्यग्दर्शन नहीं पाया जाता है। जिनमें सम्यग्दर्शन सहित निर्ग्रन्थपना है, वही निर्ग्रन्थ है। केवल नग्न रूप मात्र ही निर्ग्रन्थ नहीं है।

उपर्युक्त प्रमाणों से स्पष्ट है कि निर्ग्रन्थों के जो पुलाक, बकुश आदि पाँच भेद हैं, वे सभी सम्यग्दृष्टि भावलिङ्गी होते हैं।

**प्रश्नकर्ता-** लोकेश जैन, दमोह।

**जिज्ञासा-** हमारे यहाँ कुण्डलपुर (बड़े बाबा) में जो भी आर्यिका संघ आते हैं, उनको समर्पित किए गए श्री फलों को कमेटी वाले लोग अपने ही पास रख लेते हैं और बार-बार उन्हीं श्री फलों को समर्पित कराते है। क्या ऐसे श्रीफल निर्माल्य नहीं कहे जाते ? क्या ऐसा करना उचित है।

**समाधान-** आर्यिका माताओं के समक्ष यदि किसी व्यक्ति द्वारा कोई श्रीफल समर्पित किया जाता है या कराया जाता है, तो वह श्रीफल निर्माल्य हो जाता है अर्थात् उसको दोबारा समर्पित नहीं कराया जा सकता है। वह कर्मचारियों की सम्पत्ति हो जाती है। मैंने इस संबंध में मुनिमहाराजों से भी चर्चा की तथा आर्यिकासंघ से भी पूछा। सबका यही कथन है कि इसप्रकार समर्पित श्रीफल, चाहे वे माताजी के समक्ष अर्घ आदि बोलकर न चढ़ाए गए हों, फिर भी,

निर्माल्य की कोटि में ही आते हैं। इनको या तो कर्मचारियों को दे देना चाहिए अथवा इनको बेचकर इसका द्रव्य गौशाला आदि में दे देना चाहिए। परन्तु इन श्री फलों में कमेटी का कोई अधिकार नहीं रह जाता है है, तथा ये श्रीफल दुबारा समर्पित करने योग्य कभी नहीं रहते। इनको पुनः पुनः समर्पित कराना कदापि उचित नहीं है।

**जिज्ञासा-** भगवान के गर्भ में आने से पूर्व तथा बाद में १५ माह तक रत्नवर्षा होती है। वे रत्न असली होते हैं, फिर आजकल दिखाई क्यों नहीं पड़ते?

**समाधान-** आपके प्रश्न का उत्तर किसी भी ग्रन्थ में मेरे देखने में नहीं आया। अतः जब मैंने यह प्रश्न पूज्य आचार्य विद्यासागर जी महाराज से किया, तो उन्होंने कहा कि कालपरिवर्तन एवं पंचमकाल के जीवों के पुण्य का अभाव होने के कारण ये रत्न अपने वास्तविक स्वरूप को छोड़ देते हैं, अर्थात् रत्नरूप में नहीं रहते। और इसीलिए भगवान महावीर के समय करोड़ों रत्न १५ माह तक बरसते रहे, फिर भी वर्तमान में उपलब्ध नहीं होते हैं।

**जिज्ञासा-** निदानशल्य, निदान आर्तध्यान तथा निदानबंध में क्या अन्तर है?

**समाधान-** इन तीनों का स्वरूप इस प्रकार है- १. सर्वार्थसिद्धि ७/३७ की टीका में इस प्रकार कहा गया है- “भोगाकाङ्क्षया नियतं दीयते चित्तं तस्मिन्नेति वा निदानम्।” अर्थ- भोगाकांक्षा से जिसमें या जिसके कारण चित्त नियम से दिया जाता है वह निदान है। अर्थात् इस भव में या पर भव में मुझे सांसारिक भोगों की प्राप्ति कैसे हो, ऐसा निरंतर चिंतन बना रहना निदान नामक आर्तध्यान है।

२. सर्वार्थसिद्धि ७/१८ में इसप्रकार कहा गया है- “निदानं विषयभोगाकाङ्क्षा।” अर्थ- भोगों की लालसा निदान शल्य है।

३. भोगों की आकांक्षा के अनुसार आगामी पर्याय का बंध हो जाना निदानबंध कहलाता है। सभी प्रतिनारायण आदि निदानबंध करके ही इस पद को प्राप्त करते हैं।

उपर्युक्त तीनों परिभाषाओं को देखने से यह स्पष्ट है कि ये तीनों पृथक्-पृथक् हैं, एक नहीं।

१/२०५, प्रोफेसर्स कॉलोनी  
आगरा-२८२ ००२, ३० प्र०

सन्तशिरोमणि प०पू० आ० विद्यासागर जी महाराज के सुनामधन्य प्रिय शिष्य प०पू० मुनि श्री प्रणम्यसागर जी महाराज द्वारा प्रणीत समाधितन्त्र आर्हत भाष्य के पारायण का सुअवसर प्राप्त हुआ। उ० प्र० के पूर्व जिला मैनपुरी के अन्तर्गत उदय को प्राप्त हुए चारित्र की परमेष्ठिस्वरूप मूर्ति, संस्कृत, प्राकृत, अँग्रेजी भाषाओं के अधिकारी, व्याकरण, न्याय, सिद्धान्त के निष्णात मनीषी, अल्प वय में ही संस्कृत भाषा में टीकाओं के प्रणयन स्वरूप विलक्षण प्रतिभा के धनी मुनिश्री ने समाधितन्त्र के हार्द को खोलकर ज्ञानपिपासुओं के लिए सुखद, सहज, सरल ज्ञानोपादान रूप भोज्य को मानों थाली में ही परोस कर बड़ा उपकार किया है। सामान्य दृष्टि से ही अवलोकन करने पर, जो प्रतिभास हुआ, तदनुसार इस महनीय गरिमामय ग्रन्थ की कतिपय विशेषताओं को निम्न बिन्दुओं द्वारा प्रकट करना समीचीन होगा। दृष्टव्य है-

१. यह भाष्य अध्यात्म की भाषा में नयों की समायोजनापूर्वक विशद व्याख्यान है, जो पूर्व में रचित आ० प्रभाचन्द्र जी की टीका से विशेषता रखता है। इससे एकान्त निश्चयाभास के दृष्टिविषय से पू० मुनिश्री ने पाठकों को निश्चयप्रधान समाधिशतक के दुरुपयोग से सावधान किया है। वैसे मूलग्रन्थ में भी निश्चय के साथ व्यवहार के दृष्टिकोण को पूज्यपाद स्वामी ने प्रस्तुत किया ही है। उदाहरणार्थ कारिका संख्या ८३ और ८४ द्रष्टव्य हैं। “अपुण्यमव्रतैः पुण्यं--- अव्रतानि परित्यज्य--- परमपदमात्मनः। आर्हतभाष्य में एतद्विषयक अच्छा खुलासा है। इसी प्रकार से नय-सापेक्षता को लिए विवेचन है।”

२. अन्वयार्थ के साथ ही शब्दार्थ, नयार्थ, मतार्थ, आगमार्थ और भावार्थ सभी पद्धतियों के द्वारा अर्थ प्रकट कर पू० मुनिश्री ने अपनी विशाल ज्ञानदृष्टि का परिचय दिया है। आगमानुकूल विवेचन है।

३. प्रस्तुत भाष्य शिक्षा एवं दीक्षा गुरु प० पू० आ० विद्यासागर जी महाराज की व्याख्यान शैली का अनुसरण करता है। अध्यात्म के हार्द को सिद्धान्त की सापेक्षता का प्रतीक बनकर खोलता है।

४. भाषा और शैली को सूक्ष्मता से दृष्टिगत करने पर ज्ञात होता है कि इसमें पूर्व परम्परा के विशिष्ट टीकाकार आचार्यों की शैलियों के एक साथ दर्शन होते हैं। इससे व्याकरण और लक्षण की दृष्टि से आ० पूज्यपाद, गरिष्ठ आध्यात्मिक विद्वता पूर्ण विवेचन के अभिप्राय से आचार्य अमृतचन्द्र सूरि, टीका के एवं ग्रन्थकार के हार्द को खुलासा करने के अभिप्राय से व नययोजना के प्रयोजन से आचार्य जयसेन और ब्रह्मदेव की सहज ही स्मृति हो जाती है। अनेक गुणों से युक्त यह तात्पर्य-वृत्तिरूप में सिद्ध होती है। टीका को पढ़कर मस्तक श्रद्धा से मुनिश्री के आगे झुक जाता है।

४. पू० मुनिश्री संस्कृत, प्राकृत के अभ्यासी विद्वान हैं, उनके विषय प्रतिपादन में शब्दों का चयन स्वाभाविक सहज रूप में हुआ है। यह सरल, सुबोध, सुपाच्य, भाष्य सामान्य ज्ञाताओं को भी अध्यात्मज्ञान-प्रसार की दिशा में प्रेरित करता है।

६. आर्हतभाष्य में यथास्थान आवश्यक रूप से पर्याप्त संख्या में शास्त्रों के उद्धरण प्रस्तुत व्याख्यान की श्रीवृद्धि करते हैं। ८३ की बहुल संख्या समाधितन्त्र को बहुआयामी सिद्ध करती है।

७. स्वोपज्ञ पीठिका श्लोक एवं प्रस्तावना, मूलश्लोक व उद्धरण सूची और परिभाषिक शब्दकोष सन्दर्भ एवं शोधकार्य हेतु आवश्यक रूप से दिये हैं, इससे प्रस्तुत भाष्य का महत्त्व और अधिक बढ़ गया है।

उपर्युक्त के अतिरिक्त भी अनेकों गुणों को अपने अन्तस् में लिए हुए भाष्य महत्त्वपूर्ण कृति है। संस्कृत भाषा में टीका एक अत्यन्त ज्ञान एवं श्रमसाध्य कार्य है। इसकी जितनी प्रशंसा की जाय थोड़ी है। पाठकों हेतु यहाँ कतिपय पंक्तियाँ उद्धृत करना प्रासंगिक होगा।

“तानि व्रतान्यपि चात्मनः परमं पदं यथाख्यात-चारित्रमशेषहिंसादिनिवृत्तिलक्षणं परमोदासीनतारूप-वीतरागनिर्विकल्पसमाधिगम्यं संप्राप्य त्यजेत्। तत्र तु स्वयमेव व्रतं त्यक्तं भवति त्यजनक्रियायां पुरुषार्थानपेक्ष-त्वात्। अतो न व्रतं त्यक्तुं पौरुषं क्रियते। न च प्राक् व्रतं परित्यज्य योगिनः परमपदस्योपलम्भस्तत्कारणाभावात्। तेनावगम्यते न यावन्तार्तीयकीं भूमिं शुद्धोपयोगा-

वलम्बिकीमासीदति तावन्न परिहरेद् व्रतपरिनिष्ठितताम्। ततो मा मंस्था शुद्धोपयोगाय शुभोपयोगेषु व्रतपरिकर्मसु चर्याऽनर्थका। व्रताचरणेन पुण्यबन्धमायाति मुख्यतया गौणेन पापकर्मनिर्जराऽपि स्यात्। न च पुण्यबन्धमवरोद्धुं शक्नोति कोऽपि श्रमणः श्रेण्यारोहणे विशिष्टपुण्यबन्धोपलम्भात्। तस्मात् व्रतमाचरितव्यं पुण्यबन्धफलवाञ्छामन्तरेण।” (श्लोक ८४)।

उपर्युक्त भाष्यांश एवं स्वोपज्ञ अनुवाद का सारांश यह है कि व्रतपरिकर्मा साधु सुख के कर्मों का संवर करता है, कोई अव्रती नहीं। अव्रतों का संकल्पपूर्वक त्याग होता है, व्रतों का त्यागसंकल्पित विधान आगम में नहीं हैं। शुद्धोपयोगरूप परमपद की प्राप्ति होने पर व्रत स्वयमेव छूट जाते हैं। (यह भी ज्ञातव्य है कि निश्चय-व्रत जो निश्चयरत्नत्रय के भेद हैं, कभी नहीं छूटते)। श्रेणी-आरोहण में भी पुण्यबन्ध होता है, अतः पुण्यबन्ध हानिकारक नहीं है। व्रतों से पुण्यबन्ध होता है, तथा पापकर्म की निर्जरा भी होती है। व्रतरूप शुभोपयोग शुद्धोपयोग का साधक है, अतः जब तक शुद्धोपयोगरूप भूमिका पर आरोहण न हो, तब तक निष्ठापूर्वक व्रतपरिकर्म की चर्या अनिवार्य रूप से या शुभोपयोगरूप चर्या साधकरूप से अवश्य करणीय है। यहाँ पू० प्रणम्यसागर महाराज ने व्यवहार और निश्चय मोक्षमार्ग को परस्पर साधन-साध्य रूप में, पूरक रूप में विवेचित किया है।

उपर्युक्त संक्षिप्त समीक्षा का सार यह है कि नन्दिनी टीका आदि अनेकों संस्कृत टीकाओं के साथ ही वाङ्मय के विविध पक्ष-विषयक सर्जना के अधिकारी, त्याग-तपस्या के धनी, ज्ञान-ध्यान में संलग्न पू० मुनिश्री का उपर्युक्त भाष्य एक श्रेष्ठ रचना है, उनको कोटि-कोटि साधुवाद। पू० पू० सन्तशिरोमणि आचार्यश्री की परम कृपा से ही शिष्यों द्वारा ऐसे महान् कार्य सिद्ध होते हैं। प्रस्तुत भाष्य के विषय में मेरी भी मंगलकामना, इन्हीं भाष्यकार के शब्दों में, पाठकों को इनकी श्लोकरचना का स्वाद मिले इस हेतु,

रुचिरप्रभयाभासुर्भास्यं भासयते यथा।

भाष्यमार्हतमेतच्च भाषितं हि मया तथा ॥ पृ.२ ॥

पू० पू० मुनि श्री प्रणम्यसागर जी महाराज एवं उनके प्रस्तुत भाष्य को सविनय नमन। सन्त शिरोमणि पू० पू० आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज के जगतारक चरणों में कोटि कोटि नमन। संस्तुत्य समस्त संघ के प्रति यथेष्ट विनय, श्रेष्ठ गेट अप, कागज, मुद्रण के साथ गुरुचरणों में समर्पित श्री पदमचन्द्र शिखरचन्द्र, जिनेन्द्रकुमार, पी. एस. परिवार बेगमगंज भी बधाई के पात्र हैं, जिन्होंने प्रकाशित कराया है। प्राप्ति स्थान, धर्मोदय साहित्य प्रकाशन, खुरई रोड सागर से ६५/- में प्राप्त है। सभी को साधुवाद।

श्याम भवन, बजाजा बाजार  
देवी रोड, मैनपुरी (३०२०)

## जीवन की वीणा

एक घर में कई वर्षों से एक वीणा रखी हुई थी, जो घरवालों के लिए भारी सिरदर्द बनी हुई थी। काम की कोई गंभीर बात जब चल रही होती तो कोई शैतान बच्चा वीणा के तार छेड़ देता। घर के बड़े-बूढ़े इस अनावश्यक शोर से खीझ उठते। घर में जब भी कोई अतिथि आता तो वीणा छिपा दी जाती, ताकि उसके तारों की झंकार से बातचीत में खलल न पड़े। घरवालों ने फैसला कर लिया कि वीणा को घर से हटा देना ही बेहतर होगा। दूसरे दिन सुबह वीणा को घर के सामने के कूड़े के ढेर पर डाल दिया गया। कुछ समय बाद उन्होंने अनुभव किया कि घर अद्भुत स्वर लहरियों से गूँज रहा है। जब उन्होंने जानने की कोशिश की कि ऐसा मंत्रमुग्ध करने वाला संगीत कहाँ से आ रहा है तो उन्होंने देखा कि एक भिखारी कूड़े के ढेर पर बैठा है और वीणा बजा रहा है। यह वही वीणा थी, जो उन्होंने फेंक दी थी। उसी वीणा से संगीत के अनुपम स्वरों का वह सृजन कर रहा था। घरवालों की आँखों में आँसू आ गए। उन्होंने भिखारी से कहा- इस वीणा में इतना संगीत छिपा हुआ है, हमें पता ही नहीं था। तुमने हमारी आँखें खोल दीं। भिखारी ने कहा- “वीणा में कुछ भी नहीं छिपा है। हम जैसी उंगलियाँ लेकर वीणा के पास जाते हैं, वही वीणा से प्रकट होने लगता है।” जीवन भी वीणा की तरह ही है। हम जैसी दृष्टि लेकर जीवन के पास जाएँगे वही जीवन से प्रकट होगा।



## समाचार

### जैनविद्या के विकास में काशी का योगदान

सर्वविद्या की राजधानी काशी में जैनविद्या का भी पर्याप्त विकास हुआ है। यहाँ के जैनक आचार्यों ने संस्थाओं की स्थापना और गम्भीर ग्रन्थों के लेखन और उद्धार के द्वारा जैन साहित्य को समृद्ध किया है। पं० सुखलाल संघवी ने पार्श्वनाथ विद्याश्रम की स्थापना कर अनुसन्धान को नई दिशा दी। पं० दलसुख भाई मालवणिया ने आगम ग्रन्थों के सम्पादन और अनुवाद का ऐतिहासिक कार्य किया। पं० कैलाशचन्द्र जी शास्त्री ने नये विद्वानों को तैयार करने में श्रम किया और पं० फूलचन्द्र जी शास्त्री ने प्राचीन प्राकृत ग्रन्थों के सम्पादन और अनुवाद में रुचि ली। प्रो० महेन्द्र कुमार, डॉ० दरबारी लाल कोठिया और पं० उदयचन्द्र जैन आदि ने विशेष रूप से जैनन्याय के ग्रन्थों का उद्धार प्रकाशन आदि किया।

उक्त उद्गार काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के डॉ० अशोक कुमार जैन के हैं। वे दिनांक २९ अक्टूबर २००९ का संस्कृत संकाय में काशी की जैन विद्वत् परम्परा और उसका साहित्यिक अवदान विषय पर बोल रहे थे।

इस अवसर पर डॉ० जैन की पुस्तक 'जैनधर्म मीमांसा' का लोकार्पण भी किया गया। पुस्तक की विशेषताओं के बारे में प्रो० सुदर्शन लाल जैन ने जानकारी दी। मेरठ की संस्था द्वारा सुमतिसागर स्मृति पुरस्कार प्रदान करने पर संकाय प्रमुख प्रो० रमेशचन्द्र पण्डा ने डॉ० जैन का अभिनन्दन करते हुए कहा कि यह सम्मान जैनविद्या के प्रति समर्पित डॉ० जैन का ही नहीं है बल्कि, संकाय और काशी हिन्दू विश्वविद्यालय का भी है, जहाँ योग्य विद्वानों को विद्या-साधना के पर्याप्त अवसर सुलभ हैं। कार्यक्रम के मुख्य अतिथि सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय के श्रमणविद्या संकायाध्यक्ष प्रो० रमेश कुमार द्विवेदी ने अपने उद्बोधन में कहा कि वाराणसी की सभी उच्च शिक्षा संस्थाओं में सभी प्राचीन ग्रन्थों पर ऐतिहासिक और गम्भीर कार्य हो रहे हैं, किन्तु सबको पर्याप्त प्रचार और सम्मान नहीं मिल पाया।

कार्यक्रम का संयोजन प्रो० सूर्यप्रकाश व्यास ने किया, जैन-बौद्ध दर्शन विभागाध्यक्ष प्रो० कमलेश कुमार जैन ने स्वागत किया। समारोह में प्रो० विमलेन्दु कुमार, प्रो० विन्ध्वेश्वरी प्रसाद मिश्र प्रो० कृष्णाकान्त शर्मा, डॉ०

सदशिव द्विवेदी आदि विद्वान् और संकाय के छात्र उपस्थित थे-संकाय प्रमुख संस्कृत विद्या धर्मविज्ञान संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

### पिच्छिका परिवर्तन समारोह सानंद संपन्न

परम पूज्य १०८ आचार्य विद्यासागर जी महाराज के आध्यात्मिक शिष्य मुनि श्री १०८ क्षमासागर जी महाराज का पिच्छिका परिवर्तन समारोह अभूतपूर्व धर्मप्रभावना के साथ संपन्न हुआ, जिसमें पूज्य आर्यिका रत्न १०५ कुशलमति माता जी, धारणामति माता जी एवं पुराणमति माता जी के दर्शनों का लाभ प्राप्त हुआ। कार्यक्रम में सर्वप्रथम मंगलाचरण आशुतोष जैन के द्वारा चित्र अनावरण श्री गुरुचरण दास जी मुम्बई, दीप प्रज्ज्वलन श्री सुरेन्द्र जी कटंगहा एवं रायपुर से पधारे महेन्द्र कुमार जैन 'चूड़ी वालों' के द्वारा किया गया।

कार्यक्रम की अध्यक्षता सिंघई केवलचंद जैन के द्वारा की गई। कार्यक्रम में मध्य में क्षमासागर जी महाराज को नवीन पिच्छी देने का सौभाग्य श्री संजय जैन उपमा साड़ीवाले को प्राप्त हुआ एवं महाराज श्री की पिच्छी लेने का सौभाग्य स्व० पं० पन्नालाल जी के सुपुत्र श्री राकेश जैन बरगी हिल्सवालों को प्राप्त हुआ।

मुनिश्री जी ने पावन वर्षायोग कलश स्थापना में श्री आचार्य विद्यासागर कलश श्री ब्र. संतोष जी सागर, श्री आचार्य शांति सागर कलश श्री राजेश जी शिवपुरी एवं क्षमासागर कलश श्री नेमीचंद्र जी साधना केमिस्ट वालों को प्रदान किया गया।

कार्यक्रम का कुशल मंच संचालन ब्र. जिनेश भैया एवं संजय भैया जी द्वारा किया गया एवं उपस्थित ब्रम्हचर्य वर्ग में ब्र. सुरेन्द्र भैया जी एवं रविन्द्र भैया आदि ने मुनिश्री के जीवन चरित्र पर वक्तव्य प्रस्तुत किया एवं कार्यक्रम में पधारे समस्त अतिथियों का सम्मान गुरुकुल ट्रस्ट कमेटी के सदस्यों द्वारा किया गया तथा कार्यक्रम का आभार प्रदर्शन में गुरुकुल कमेटी की महामंत्री श्री कमल कुमार दानी द्वारा किया गया।

अधिष्ठाता- ब्र. जिनेश कुमार जैन 'आदित्य'  
श्री वर्णी दि. जैन गुरुकुल, जबलपुर

### चमत्कार जी में १२ कृतियों का विमोचन

बुरहानपुर (म.प्र.), श्री अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर

जैन विद्वत्परिषद् के राष्ट्रीय अधिवेशन के मध्य दि. २९ सितम्बर को श्री दिगम्बर जैन अतिशयक्षेत्र चमत्कार जी, आलनपुर, सवाईमाधोपुर, (राज.) में प.पू. मुनिपुङ्गव श्री सुधासागर जी महाराज के सान्निध्य में एक साथ १२ कृतियों का विमोचन पुण्यार्जकों द्वारा किया गया। इन कृतियों में बीसवीं शती के जैन विद्वानों का अवदान (सं-डॉ० शीतलचन्द जैन, डॉ० फूलचन्द जैन, डॉ० सुरेन्द्र कुमार जैन) का विमोचन- श्री महेशचन्द्र जैन, डॉ० आशीष जैन ने, विद्वत्परिषद् संविधान का विमोचन- श्रीमती डॉ० विमला जैन, डॉ० जैनमती जैन, श्रीमती प्रसन्न जैन, डॉ० ज्योति जैन ने, महावीर जागृति संदेश (सं.-मनीष जैन), पार्श्व ज्योति (प्रकाशक-श्रीमती इन्द्रा जैन), अनेकान्त मनीषी डॉ० रमेशचन्द्र जैन अभिनन्दन ग्रंथ (रूपरेखा), मूलाचार वसुनंदि पारिभाषिक शब्द कोश (डॉ० रमेशचन्द्र जैन), आचार्य कुन्दकुन्द का तत्त्वदर्शन (डॉ० रमेशचन्द्र जैन) का विमोचन श्री रमेशचन्द्र जैन, श्री अजित कुमार जैन गाँधी ने, जैनधर्म मीमांसा (डॉ० अशोक कुमार जैन), का विमोचन- श्री मनोहर जी, सूरत, श्रावकाचार संहिता (डॉ० नरेन्द्र कुमार जैन) का विमोचन- श्री अशोककुमार जैन, श्री महेन्द्र कुमार जैन पाटनी ने, पर्यावरणीय अनुचिन्तन और मूकमाटी (डॉ० सुरेन्द्र कुमार जैन) का विमोचन- सर्वश्री नाथूलाल जैन, मोहनलाल जैन, सोहनलाल जैन, नरेन्द्र कुमार जैन, महेश कुमार जैन, दिनेश कुमार जैन, सवाईमाधोपुर ने, चिन्तन-शिखर (डॉ० सुरेन्द्र कुमार जैन) का विमोचन-सर्वश्री चन्द्रप्रकाश जैन, रमेशचन्द्र जैन छाबड़ा ने, शाकाहार एवं व्यसन मुक्त जीवन शैली (डॉ० सुरेन्द्र कुमार जैन) का विमोचन-श्री माधवप्रसाद अनिल कुमार जैन, अलवर (राज.) ने किया तथा परम पूज्य मुनिपुङ्गव श्री सुधासागर जी महाराज एवं पू. क्षुल्लक द्वय से शुभाशीर्वाद प्राप्त किया।

### विद्वत्परिषद् पुरस्कार समर्पण समारोह

श्री अखिल भारतीयवर्षीय दिगम्बर जैन विद्वत्परिषद् द्वारा प.पू. मुनिपुङ्गव श्री सुधासागर जी महाराज, पू. क्षु. श्री गंभीरसागर जी महाराज, पू. क्षु. श्री धैर्यसागर जी महाराज के सान्निध्य एवं द्विशताधिक विद्वानों की उपस्थिति में इस प्रकार पुरस्कृत किया गया-

### श्री गणेशप्रसाद वर्णी स्मृति पुरस्कार

१. पं० अमृतलाल जैन, प्रतिष्ठाचार्य, दूमोह-वर्ष २००८।
२. पं० हीरालाल जैन पाँडे, 'हीरक', भोपाल वर्ष २००९।

### पं० गोपालदास वैर्या स्मृति पुरस्कार

१. डॉ० सनतकुमार जैन, जयपुर (जैन श्रावकाचार अनुशीलन)- वर्ष २००८।
२. पं० सुदेश जैन कोठिया, इन्दौर (अंको का विज्ञान-संपादन एवं कहानी लेखन)- वर्ष २००९।

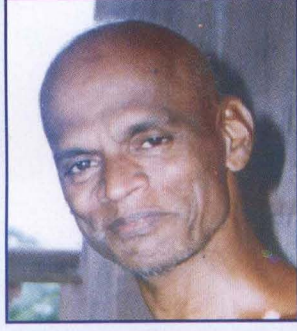
उक्त चारों पुरस्कारों का पुण्यार्जन श्री राजेन्द्र नाथूलाल जैन मेमोरियल चैरिटेबल ट्रस्ट, सूरत ने किया। ट्रस्ट के अध्यक्ष श्री ज्ञानेन्द्र गदिया एवं उनकी धर्मपत्नी श्रीमती मधु जैन ने शाल, श्रीफल, प्रशस्तिपत्र एवं पुरस्कार राशि ५१०० रु. से चारों विद्वानों को पुरस्कृत किया। विद्वत्परिषद् एवं चातुर्मास समिति की ओर से पुण्यार्जक परिवार का शाल, श्रीफल, पुष्पहार से सम्मान किया गया। ट्रस्ट एवं गदिया परिवार का परिचय डॉ० सुरेन्द्र कुमार जैन (महामंत्री-विद्वत्परिषद्) ने दिया तथा उनकी दान भावना की सराहना की।

इसी क्रम में 'विद्वत्परिषद्' के तत्त्वावधान में डॉ० पं० पन्नालाल जैन साहित्याचार्य स्मारक समिति, सागर (म.प्र.) के सौजन्य से एक नये पुरस्कार का सूत्रपात्र किया गया- पं० पन्नालाल जैन साहित्याचार्य स्मृति विद्वत्परिषद् पुरस्कार। इस पुरस्कार से वर्ष- २००९ के लिए प्रो० (डॉ०) फूलचन्द जैन 'प्रेमी' वाराणसी को 'प्रवचन-परीक्षा' कृति के सम्पादन के लिए चुना गया। उन्हें यह पुरस्कार प्रशस्ति-पत्र, पुरस्कार राशि एवं पुष्पहार के साथ पं० पन्नालाल जी के सुपुत्र श्री महेशचन्द्र जैन, सागर, अध्यक्ष-डॉ० शीतलचन्द जैन, संयुक्तमंत्री-डॉ० नेमीचन्द्र जैन ने पुरस्कृत किया। पुण्यार्जक समिति एवं पं० पन्नालाल जी साहित्याचार्य का परिचय डॉ० नेमिचन्द्र जैन ने दिया। इस अवसर पर श्री महेशचन्द्र जैन का भी शाल, श्रीफल, पुष्पहार से सम्मान किया गया।

### डॉ० नरेन्द्रकुमार जैन को शास्त्रपरिषद् पुरस्कार

श्रवणबेलगोला में आयोजित अधिवेशन में दिनांक ४ अक्टूबर २००९ को सुप्रसिद्ध विद्वान् डॉ० नरेन्द्र कुमार जैन (सनावद) को वर्ष २००९ में अ.भा.दि. जैन शास्त्र परिषद् के स्व. रामस्वरूप जैन स्मृति पुरस्कार से सम्मानित किया गया। इसी कड़ी में डॉ० वृषभप्रसाद जैन, डॉ० शेखरचन्द्र जैन, ब्र० जयनिशांत, डॉ० संतोष कुमार जैन, पं० जयंत कुमार जैन को शास्त्र परिषद् पुरस्कारों से सम्मानित किया गया।

डॉ० सुरेन्द्र कुमार जैन



# बारह भावना

## (वसन्त तिलका छन्द)

- मुनि श्री योगसागर जी

१  
स्वर्गादि वैभव तथा बलकीर्ति सत्ता।  
नाना प्रकार सुख साधना औ प्रवक्ता॥  
संसार के सुख सभी पल में विनाशी।  
हैं मोह के फल सभी छण में उदासी॥

२  
माता पिता बहन औ धन-सम्पदा है।  
ये मृत्यु के समय में न बचा सके हैं॥  
तो कौन हैं जगत में शरणा तुझे हैं।  
हैं देव-शास्त्र-गुरु ही शरणा मुझे हैं॥

३  
हैं चार ये गति सदा जग में रुलायें।  
ये मोह के फल सदा सब को चखायें॥  
जो ज्ञान ध्यान करते भव को नशाते।  
वे धन्य हैं अमर जीवन को बिताते॥

४  
ये तीन लोक भर में इसका न कोई।  
प्रत्येक जीव रखते निज स्वार्थ को ही॥  
एकत्व रूप निज आतम ही खरा है।  
यों जान के सब विकल्प निवारते हैं॥

५  
क्यों मोह भाव करते जड़ पुद्गलों से।  
तेरे न साथ चलते धन धान्य पैसे॥  
अध्यात्म बोध कर के पर भाव त्यागो।  
सच्चा यही परम जीवन को बनाओ॥

६  
नाना प्रकार मल को तन ही बनाता।  
प्रत्येक सुन्दर पदार्थ मलीन होता॥  
दुर्गन्ध युक्त तन से ममता नहीं है।  
वे भव्य त्याग तप से डरते नहीं हैं॥

७  
जो राग-द्वेष करता भव को बढ़ाता।  
ये मूल कारण यही अघ को बुलाता॥  
आस्रव्य मार्ग इसको कहते महात्मा।  
यों जान के बुध जनो भजलो निजात्मा॥

८  
वैराग्य भाव जिसका मजबूत होगा।  
ओ कर्म के उदय में न कभी डिगोगा॥  
संसार का दहन संवर भाव से है।  
यों मोक्ष का पथ सुसाधक साधते हैं॥

९  
जो पूर्व में करम अर्जित हो भले ही।  
ओ ना कभी फल दिला सकता कभी ही॥  
जो ज्ञान ध्यान तप आदिक में ढला हो।  
यो निर्जरा तुम करो सुख चैन जीवो॥

१०  
जीवादि द्रव्य रहते वह लोक जानो।  
जो लोक के बहिर भाग अलोक मानो॥  
मोही सदा भटकता इस लोक में ही।  
वे लोक के शिखर पे रहते निजात्मी॥

११  
जो दीर्घकाल सबने दुख में बिताया।  
सौभाग्य से मनुज जीवन को सुपाया॥  
हे भव्य दुर्लभ सुवर्ण घड़ी न भूले।  
खोजो सभी परम आतम रत्न पाले॥

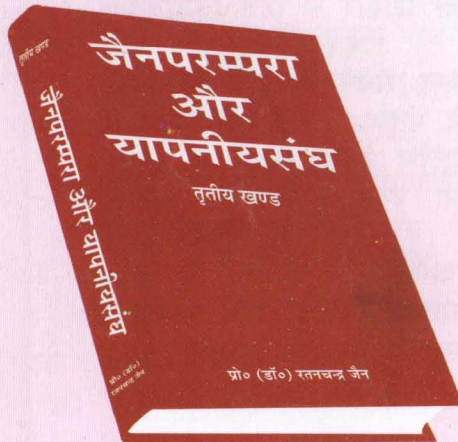
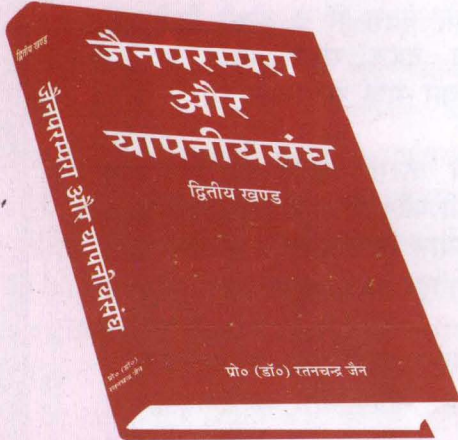
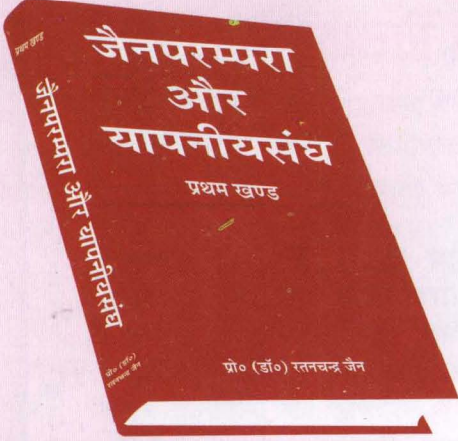
१२  
है धर्म एक जग में शरणा दिलाता।  
जो वीतरागमय जीवन को बनाता॥  
संसार के सुख तथा निज सौख्य दाता।  
ऐसा महा धरम ही सबको सुहाता॥

प्रस्तुति - प्रो० रतनचन्द्र जैन



## प्रकाशित हो गया है

प.पू. आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज के तत्त्वावधान में प्रो. रतनचन्द्र जैन (भोपाल, म.प्र.) के द्वारा दस वर्षों के अनवरत परिश्रम से लिखित, तीन खण्डों एवं 2600 पृष्ठों में समाया चिरप्रतीक्षित ग्रन्थ : **जैनपरम्परा और यापनीयसंघ**।



- दिगम्बर-श्वेताम्बर-यापनीय जैन साहित्य, वैदिक एवं बौद्धसाहित्य, संस्कृत गद्य-पद्य-नाट्य साहित्य तथा शिलालेखों और पुरातत्त्व के गहन अध्ययन से उपलब्ध प्रमाणों के आधार पर निरसन किया गया है उन मिथ्यावादों का, जो दिगम्बर जैन-परम्परा और आचार्य कुन्दकुन्द की ऐतिहासिकता एवं षट्खण्डागम आदि अठारह दिगम्बरजैन ग्रन्थों की कर्तृपरम्परा के विषय में प्रचलित किये गये हैं, अनेक श्वेताम्बर जैन मुनियों एवं विद्वानों तथा कतिपय दिगम्बर जैन विद्वान्-विदुषियों के द्वारा।
- इसमें है दिगम्बरजैन-परम्परा की प्रागैतिहासिकता, आचार्य कुन्दकुन्द की ईसापूर्व प्रथम शती में अवस्थिति एवं षट्खण्डागम आदि जिन 18 दिगम्बर जैन ग्रन्थों को यापनीयग्रन्थ बतलाया गया है, उनके दिगम्बराचार्यकृत होने के अखण्ड्य प्रमाणों का प्रस्तुतीकरण।
- अनेक आक्षेपों का निरसन, अनेक नवीन तथ्यों का उद्घाटन।
- मिथ्यावादजन्य भ्रान्तियों में फँसने से बचने-बचाने तथा अपनी धर्मपरम्परा के इतिहास एवं साहित्यिक विरासत की प्रामाणिकता से अवगत होने हेतु प्रत्येक श्रावक-श्राविका एवं मुनि-आर्यिका के लिए अवश्य पठनीय।
- शोधार्थियों के लिये तथा जैन संघों के प्रामाणिक इतिहास एवं सिद्धान्तों के जिज्ञासुओं के लिए अत्यन्त उपादेय।
- प्रत्येक जैनमन्दिर, जैन-शिक्षण संस्थान, महाविद्यालयों और देश-विदेश के विश्वविद्यालयों तथा शोध संस्थानों में संग्रहणीय।
- **प्रकाशक एवं प्राप्तिस्थान** : सर्वोदय जैन विद्यापीठ, 1/205, प्रोफेसर्स कालोनी, आगरा-282002  
फोन: 0562-2852278, मो. 9412264445
- **मूल्य** : प्रत्येक खण्ड 500 रु., पूरा सेट (तीनों खण्ड) 750 रु. (31 जनवरी 2010 तक)

स्वामी, प्रकाशक एवं मुद्रक : रतनलाल बैनाड़ा द्वारा एकलव्य ऑफसेट सहकारी मुद्रणालय संस्था मर्यादित, 210, जोन-1, एम.पी. नगर, भोपाल (म.प्र.) से मुद्रित एवं 1/205 प्रोफेसर्स कालोनी, आगरा-282002 (उ.प्र.) से प्रकाशित। संपादक : रतनचन्द्र जैन।